* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

# कल्याण

मूल्य १० रुपये

शिवस्तुति

कृपामूर्ति श्रीमारुति

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

# कल्याण

मूक होइ बाचाल पंगु चढ़इ गिरिबर गहन।
जासु कृपाँ सो दयाल द्रवउ सकल कलि मल दहन॥


वर्ष ९६ | गोरखपुर, सौर चैत्र, वि० सं० २०७८, श्रीकृष्ण-सं० ५२४७, मार्च २०२२ ई० | संख्या ३

पूर्ण संख्या ११४४


## 'रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि'

अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि॥

(श्रीरामचरितमानस ५। श्लो० ३)

'जो अतुल बलके धाम, सोनेके पर्वत (सुमेरु)-के समान कान्तियुक्त शरीरवाले, दैत्यरूपी वन (को ध्वंस करने)-के लिये अग्निरूप, ज्ञानियोंमें अग्रगण्य, सम्पूर्ण गुणोंके निधान, वानरोंके स्वामी और श्रीरघुनाथजीके प्रिय भक्त हैं, उन पवनपुत्र श्रीहनुमान्‌जीको मैं प्रणाम करता हूँ।'

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण १,८०,०००)

**कल्याण, सौर चैत्र, वि० सं० २०७८, श्रीकृष्ण-सं० ५२४७, मार्च २०२२ ई०, वर्ष ९६—अंक ३**

# विषय-सूची

**विषय** **पृष्ठ-संख्या**

१- 'रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि' ........ ३
२- सम्पादकीय ........ ५
३- कल्याण ........ ६
४- देवताओं और मुनियोंकी विवाहहेतु शिवसे प्रार्थना [ **आवरणचित्र-परिचय** ] ........ ७
५- 'यतो धर्मस्ततो जयः' (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ........ ८
६- भौतिक जगत्पर सूक्ष्म जगत्का प्रभाव (श्रीनलिनीकान्त गुप्त, श्रीअरविन्दाश्रम, पांडिचेरी) ........ १०
७- होलीके त्यौहारपर हमारा कर्तव्य (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ........ १२
८- जब अपवित्र विचार घेरते हैं! (श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट) ........ १४
९- काम-प्रभावसे भगवान् ही बचाते हैं ........ १७
१०- मुक्तिका रहस्य [ **साधकोंके प्रति** ] (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) ........ १८
११- प्रभु श्रीराम और जटायुका प्रथम मिलन (श्रीजगदीशप्रसादजी गुप्त) ........ १९
१२- भक्तिकी शिखर-साधना (श्रीसुरेशजी शर्मा) ........ २१
१३- अन्नदोष [ **बोधकथा** ] ........ २२
१४- उज्जैनका महाकाल-ज्योतिर्लिंग [ **तीर्थ-दर्शन** ] (पं० श्रीआनन्दशंकरजी व्यास) ........ २३
१५- रामसखा वानरराज सुग्रीवका शौर्य (डॉ० श्रीअजित कुमार सिंहजी, एम०ए०, पी-एच०डी०) ........ २८
१६- प्राचीनताको अक्षुण्ण रखना आवश्यक ........ ३०
१७- जम्बूद्वीप (एशिया)-की पौराणिक पर्वतीय संरचना (प्रो० श्रीअभिराजराजेन्द्रजी मिश्र) ........ ३१
१८- अपनी कमाईका पकवान ताजा! [ **बोधकथा** ] ........ ३४
१९- पूर्वजन्मके कर्म प्रभावित करते हैं स्वास्थ्य (प्रो० श्रीअनूपकुमारजी गक्खड़) ........ ३५
२०- गरीबोंकी उपेक्षा पूरे समाजके लिये घातक है [ **बोधकथा** ] ........ ३६
२१- श्रीरामचरितमानसमें मायाके प्रभावका निरूपण (डॉ० श्रीफूलचन्द प्रसादजी गुप्त) ........ ३७
२२- पंचरसाचार्य श्रीरामहर्षणदासजी महाराज [ **सन्त-चरित** ] (विद्यावाचस्पति डॉ० श्रीराजेशजी उपाध्याय 'नार्मदेय') ........ ४०
२३- भवरोगकी दवा (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) ........ ४१
२४- तुकारामका गो-प्रेम [ **गो-चिन्तन** ] ........ ४२
२५- काशीनरेशकी गो-भक्ति ........ ४२
२६- सुभाषित-त्रिवेणी ........ ४३
२७- व्रतोत्सव-पर्व [ **वैशाखमासके व्रत-पर्व** ] ........ ४४
२८- कृपानुभूति ........ ४५
२९- पढ़ो, समझो और करो ........ ४७
३०- मनन करने योग्य ........ ५०

## चित्र-सूची

१- शिवस्तुति ........ (रंगीन) ........ आवरण-पृष्ठ
२- कृपामूर्ति श्रीमारुति ........ ( " ) ........ मुख-पृष्ठ
३- वैभीषणिका मणिकुण्डलकी सहायताके लिये पितासे कहना ...... (इकरंगा) ........ ९
४- राजा दशरथका शनिपर संहारास्त्रका सन्धान करना ........ ( " ) ........ १९
५- भगवान् महाकाल-मन्दिर एवं ज्योतिर्लिंग, उज्जैन ........ ( " ) ........ २३
६- सुग्रीव और रावणका मल्लयुद्ध ........ ( " ) ........ २९
७- श्रीराम-लक्ष्मण-संवाद ........ ( " ) ........ ३७
८- श्रीरामहर्षणदासजी महाराज ........ ( " ) ........ ४०

**एकवर्षीय शुल्क**
₹ २५०

**जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥**
**जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय॥**
**जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥**

**पंचवर्षीय शुल्क**
₹ १२५०

**विदेशमें शुल्क** **Air Mail** } **वार्षिक US$ 50 (₹ 3,000)** **पंचवर्षीय US$ 250 (₹ 15,000)** { **Us Cheque Collection Charges 6$ Extra**

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**
आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**
सम्पादक—**प्रेमप्रकाश लक्कड़**
**केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित**

website : **gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | ✆ **09235400242 / 244**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**
**Online सदस्यता हेतु gitapress.org** पर **Kalyan** या **Kalyan Subscription** option पर click करें।
**अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क gitapress.org** अथवा **book.gitapress.org** पर निःशुल्क पढ़ें।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।

॥ श्रीहरि: ॥

**मानव-शरीर आधि-व्याधिसे ग्रस्त रहता है। आधि मन-मस्तिष्कसे जुड़े रोगोंका नाम है और व्याधि शरीरके अन्य अंगोंमें आये रोग हैं। रोगनाश और स्वास्थ्य-लाभके लिये ओषधि आदिका प्रयत्न अत्यन्त आवश्यक है; क्योंकि शास्त्रका वचन है—**‘शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।’ **(धर्म-साधनमें शरीर पहली आवश्यकता है।)**

**चिकित्साके साथ ही आस्तिकजनोंके द्वारा करनेयोग्य दो आध्यात्मिक प्रयोग यहाँ प्रस्तुत हैं—**

१-अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम्।
सूर्यपादोदकं तीर्थं जठरे धारयाम्यहम्॥

**—ऐसा बोलकर थोड़ा-सा जल भगवान् सूर्यको लुटिया आदिसे किसी पात्रमें अर्घ्य देनेकी तरह समर्पितकर पी लेना चाहिये, जो सभी रोगोंका प्रतीकार करता है।**

२-अच्युतानन्तगोविन्दनामस्मरणभेषजात्।
नश्यन्ति सकला रोगा: सत्यं सत्यं न संशय:॥

**यह महर्षि व्यास और भगवान् धन्वन्तरिका वचन है।** ‘अच्युताय नम:’, ‘अनन्ताय नम:’, ‘गोविन्दाय नम:’ **का मालाके प्रत्येक मनियेपर जप करते हुए नित्य कम-से-कम एक माला पूरी करनी चाहिये। इस प्रयोगसे आधि-व्याधिका नाश होनेका अनेक साधकोंका अनुभव है।**

**—सम्पादक**

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

# कल्याण

***याद रखो***—यदि तुम किसी दूसरेसे सुखकी आशा रखते हो, तो तुम्हें कभी सुख नहीं मिलेगा; क्योंकि ऐसी अवस्थामें तुम्हारा सुख तुम्हारे अपने अधीन नहीं है, उसके अधीन है। अत: दूसरे किसीसे किसी प्रकारके सुखकी आशा-प्रतीक्षा न करो। भगवान्ने तुम्हारी योग्यताके अनुसार तुम्हारे हितके लिये तुम्हें जो कुछ दिया है, उसीमें सुखका अनुभव करो। तुम्हारा सुख तुम्हारे अपने अधीन होना चाहिये, पराधीन नहीं।

***याद रखो***—जो दूसरोंसे सुखकी आशा न रखकर अपनी योग्यताके अनुसार दूसरोंको सुख पहुँचानेके प्रयत्नमें लगा रहता है, वही सुखी होता है। उसे कभी आशाभंग या निराशाका दु:ख नहीं भोगना पड़ता, न कभी दूसरोंके किसी कार्यको उनके कर्तव्य-पालनकी अवहेलना मानकर ही उसे दु:ख या क्रोध होता है।

***याद रखो***—यदि तुम अपने प्राप्त साधनोंसे—चाहे वे अत्यन्त नगण्य ही क्यों न हों—दूसरोंको सुख पहुँचानेका प्रयत्न करते रहोगे, तो तुम्हारे वे साधन उत्तरोत्तर बढ़ते रहेंगे—तुम्हारे अन्दर दूसरोंको सुख पहुँचानेकी प्रवृत्ति और शक्ति भी बढ़ेगी और तभी तुम दूसरोंके साथ रहनेके यथार्थ अधिकारी बनोगे। समझ रखो—दूसरोंके साथ रहनेका वही अधिकारी है, जो दूसरोंको सुख पहुँचाता है और सदा उनका हित देखता है।

***याद रखो***—तुम्हारे पास जो कुछ भी है, सब भगवान्का है। भगवान्की वस्तु भगवान्की आज्ञाके अनुसार भगवान्की सेवामें लगा देनेमें उसका सदुपयोग है। जहाँ-जहाँ दु:ख है—अभाव है, वहाँ-वहाँ भगवान् ही उन वस्तुओंको तुमसे चाहते हैं, यह समझकर उनकी वस्तुओंको प्रसन्नतापूर्वक उन्हें देकर अपने कर्तव्यका पालन करो।

***याद रखो***—तुम यदि अपना सुधार चाहते हो, अपनी उन्नति चाहते हो, तो दूसरोंके गुण देखो और अपने दोष देखो। दूसरेके दोषोंको देखने और उनकी आलोचना करनेसे केवल समय ही नष्ट नहीं होता, वरं अपने अन्दर अभिमानकी मात्रा बढ़ती है। दूसरोंके प्रति घृणा और द्वेष उत्पन्न होता है, जो बाहर क्रियाशील होकर भयानक कलह और वैर पैदा कर देता है।

***याद रखो***—यदि तुम अपने दोषोंको देखोगे और उन्हें ढूँढ़-ढूँढ़कर—जरा-सा भी कहीं पाते ही उसे नष्ट कर देनेकी कोशिश करोगे, तो तुम शीघ्र ही दोषमुक्त हो जाओगे।

***याद रखो***—यदि तुम दूसरोंकी ओर देखते रहोगे, उनके दोषोंका निरीक्षण करते रहोगे, तो अपने दोषोंको देखने और उन्हें मिटानेकी ओर तुम्हारा ध्यान ही नहीं जायगा और वे तुम्हारी बेजानकारीमें बढ़ते ही रहेंगे।

***याद रखो***—यदि तुम दूसरोंके दोष देखोगे तो तुम्हें अपनेमें गुण हैं, ऐसा अभिमान होगा और बिना हुए ही अपनेमें गुण देखने लगोगे। परिणाम यह होगा कि तुम्हारी उन्नति—तुम्हारे गुणोंका विकास रुक जायगा और तुमपर दोषोंका आधिपत्य बढ़ने लगेगा।

***याद रखो***—प्रकृति त्रिगुणमयी है, इसमें तमोगुण भी है। तमोगुणमें ही दोषोंका निवास है। इसलिये अपने तमोगुणका नाश करके सत्त्वगुणको बढ़ाओ और बढ़े हुए सत्त्वगुणसे दूसरोंके तमोगुणको दूर करो। सत्त्वगुणसे ही सद्व्यवहार, सदाचार बढ़ते हैं और उन्हींसे दूसरोंके तमोगुणका नाश होता है। तमोगुणसे तमोगुण नहीं मिटता, बल्कि बढ़ता है। अतएव दूसरोंके दोष दूर करनेका तरीका यही है कि उनके गुण देखो, अपने सद्व्यवहारसे उनके अन्दर छिपे तथा सोये हुए गुणोंका विकास करो और अपने पास जो कुछ भी उनके कामकी चीज है, उन्हें देकर उनके अभावकी पूर्ति करो। **'शिव'**

आवरणचित्र-परिचय—

# देवताओं और मुनियोंकी विवाहहेतु शिवसे प्रार्थना

भगवान् शंकर स्वभावसे ही विरक्त एवं आत्माराम हैं। सृष्टिके प्रारम्भमें ही उन्होंने स्त्री-परिग्रहकी इच्छा त्याग दी। ब्रह्माजीको उनके इस अखण्ड वैराग्यसे अपने सृष्टिकार्यमें बाधा पड़ती दिखायी दी। वे शंकरजीके वीर्यसे एक पराक्रमी पुत्र प्राप्त करना चाहते थे, जो विध्वंसकारी असुरोंका दमन करनेवाला तथा देवताओंका संरक्षक हो। इसके लिये उन्होंने शंकरजीसे विवाह करनेके लिये अनुरोध किया, किंतु वे अपने संकल्पसे विचलित न हुए। भगवान् शिव दीर्घकालीन समाधिमें संलग्न होकर सदा अपने इष्टदेव साकेत-विहारी श्रीरघुनाथजीका चिन्तन करते रहते हैं। सृष्टि और संहारके झमेलेमें पड़ना उन्हें स्वीकार नहीं था। ब्रह्माजी एक ऐसी नारीकी खोजमें थे, जो महादेवके अनुकूल हो, उनके तेजको धारण कर सके और अपने दिव्य सौन्दर्यसे उनके मनपर भी अधिकार प्राप्त करनेमें समर्थ हो; किंतु ऐसी कोई स्त्री उन्हें दिखायी न दी, तब उन्होंने अपनी अभीष्ट-सिद्धिके लिये भगवती विष्णुमायाकी आराधना करनी ही उचित समझी।

ब्रह्माजीके नव मानस पुत्रोंमें प्रजापति दक्ष बहुत प्रसिद्ध हैं। इनकी उत्पत्ति ब्रह्माजीके दाहिने अँगूठेसे हुई थी। प्रजापति वीरणकी कन्या वीरिणी इनकी धर्मपत्नी थी। ब्रह्माजीके आदेशसे दक्षने आराधना करके भगवतीको पुत्रीरूपमें प्राप्त किया। परंतु भगवतीने उनसे पहले ही कह दिया कि 'यदि तुम कभी मेरा तिरस्कार करोगे, तो मैं तुम्हारी पुत्री न रह सकूँगी। शरीर त्यागकर अन्यत्र चली जाऊँगी।'

कन्याका साधु-स्वभाव और भोलापन देखकर ही माता-पिताने उसका नाम 'सती' रख दिया था। सतीका हृदय बचपनसे ही भगवान् शंकरकी ओर आकृष्ट था। कुछ बड़ी होनेपर उसने खेल-कूद और मनोरंजनसे मनको हटा लिया और वह नियमपूर्वक महादेवजीकी आराधना करने लगी। वह प्रातःकाल ब्राह्मवेलामें उठकर गंगास्नान करती और भगवान्की पार्थिव मूर्ति बनाकर फूल और बिल्वपत्र आदिसे उसकी विधिवत् पूजा करती थी। फिर नेत्र बन्द करके मन-ही-मन प्राणाधारका ध्यान करती और उनसे मिलनेको उत्सुक होकर देरतक आँसू बहाया करती थी।

सच्चे प्रेमकी पिपासा प्रतिक्षण बढ़ती ही रहती है। यही दशा सतीकी भी थी। उनके मन-प्राण भगवान् शंकरके लिये व्याकुल रहने लगे। उसे विरहका एक-एक क्षण युगके समान प्रतीत होता था। उसकी जिह्वापर 'शिव'का नाम था। हृदयमें उन्हींकी मनोहर मूर्ति बसी हुई थी। उसकी आँखें शिवके सिवा दूसरे पुरुषको देखना नहीं चाहती थीं। वह सोचती, 'क्या आशुतोष भगवान् शिव मुझ दीन अबलापर भी कभी कृपा करेंगे?'

सतीकी यह प्रेम-साधना आगे चलकर कठोर तपस्याके रूपमें परिणत हो गयी।

उधर ब्रह्मा-विष्णु आदि देवता तथा ऋषि-मुनि भगवान् शंकरके पास गये और उनकी स्तुति करने लगे। तब प्रसन्न होकर भगवान् शिवने उन सबसे आनेका कारण पूछा। इसपर सबने असुरविनाशक पुत्रकी प्राप्तिके लिये उनसे विवाह करनेका अनुरोध किया। शिवने विवाहकी अनुमति दे दी और योग्य कन्याकी खोज करनेको कहा। ब्रह्माजीने कहा— 'महेश्वर! दक्ष-कन्या सती आपको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये तपस्या कर रही है। वही आपके सर्वथा अनुरूप है। आप उसे ग्रहण करें।' शिवने 'तथास्तु' कहकर देवताओंको विदा कर दिया। कालान्तरमें दक्षकन्या सतीके साथ उनका विवाह सम्पन्न हुआ।

# 'यतो धर्मस्ततो जयः'

( ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका )

पूर्वकालकी बात है। गौतमीके दक्षिण-तटपर भौवन नामका एक विख्यात नगर था। उसमें गौतम नामका एक ब्राह्मण रहता था। गौतमकी एक वैश्यके साथ मित्रता हो गयी। वैश्यका नाम मणिकुण्डल था। इनमें एक दरिद्र था, दूसरा धनी। एक बार गौतमकी प्रेरणासे दोनों मित्रोंने धन कमानेके उद्देश्यसे विदेश जानेका निश्चय किया। मणिकुण्डलने अपने घरसे बहुत-से रत्न लाकर गौतमको दिये और कहा—'मित्र! इस धनसे हमलोग सुखपूर्वक देश-देशान्तरोंमें भ्रमण करेंगे और धन कमाकर फिर घर लौट आयेंगे।'

इस प्रकार आपसमें सलाह करके माता-पिताको सूचना दिये बिना ही दोनों घरसे निकल पड़े। किंतु मणिकुण्डलके रत्नोंको देखकर गौतमके मनमें पाप समा गया। वह जिस-किसी प्रकार उन रत्नोंको हड़प जाना चाहता था। एक बार बातों-ही-बातोंमें दोनोंमें परस्पर विवाद छिड़ गया। गौतम कहता था—'पापसे ही जीवोंकी उन्नति होती है और वे मनोवांछित सुख प्राप्त करते हैं। संसारमें धर्मात्मालोग प्रायः दुखी ही देखे जाते हैं। अतः एकमात्र दुःखको पैदा करनेवाले धर्मसे क्या लाभ!' इसके विपरीत वैश्य कहता था—'नहीं-नहीं, ऐसी बात कदापि नहीं है। वस्तुतः धर्ममें ही सुख है। पापमें तो केवल दुःख, भय, शोक, दरिद्रता और क्लेश ही रहते हैं। जहाँ धर्म है, वहीं मुक्ति है।' इस प्रकार विवाद करते हुए दोनोंमें यह शर्त लगी कि जिसका पक्ष श्रेष्ठ सिद्ध हो, वह दूसरेका धन ले ले। इस प्रकारकी शर्त करके दोनों जो भी मिलता था, उससे यही पूछते थे—'पृथ्वीपर धर्म बलवान् है या अधर्म?' इसपर किसीने उनसे यह कह दिया—'जो धर्मके अनुसार चलते हैं, उन्हें दुःख भोगना पड़ता है और इसके विपरीत बड़े-बड़े पापी मनुष्य सुखी देखे जाते हैं।' यह निर्णय सुनकर वैश्यने अपना सारा धन ब्राह्मणको दे दिया। किंतु मणिकुण्डलकी धर्ममें दृढ़ निष्ठा थी। बाजी हार जानेपर भी वह बराबर धर्मकी ही प्रशंसा करता रहा।

तब ब्राह्मणने कहा—'अच्छा, तो अब दोनों हाथोंकी बाजी लगायी जाय। जो जीत जाय, वह दूसरेके हाथ काट ले।' वैश्यने यह शर्त भी मंजूर कर ली। फिर दोनोंने जाकर पहलेकी भाँति लौकिक मनुष्योंसे इसका निर्णय कराया। निर्णय ज्यों-का-त्यों रहा। तब गौतमने मणिकुण्डलके दोनों हाथ काट लिये और उससे पूछा—'मित्र! अब क्या कहते हो?' मणिकुण्डल अपने निश्चयपर अटल था। उसने कहा—'भाई! मेरे प्राण कण्ठतक आ जायँ, तब भी मैं धर्मको ही श्रेष्ठ मानता रहूँगा। धर्म ही देहधारियोंकी माता, पिता, सुहृद् और बन्धु है।' इस प्रकार दोनोंमें विवाद चलता रहा। ब्राह्मण धनवान् हो गया और वैश्य धनके साथ-साथ अपने दोनों हाथ भी खो बैठा। धर्मपर दृढ़ रहनेवालोंको प्रारम्भमें इसी प्रकार कष्ट उठाने पड़ते हैं। इस तरह भ्रमण करते हुए दोनों गौतमी गंगाके तटपर भगवान् योगेश्वरके स्थानमें आ पहुँचे। वहाँ पहुँचनेपर फिर दोनोंमें विवाद आरम्भ हो गया। वैश्य वहाँ भी धर्मकी ही प्रशंसा करता रहा। इससे ब्राह्मणको बड़ा क्रोध हुआ। वह वैश्यपर आक्षेप करते हुए बोला—'धन चला गया। दोनों हाथ कट गये। अब केवल तुम्हारे प्राण बाकी हैं। यदि फिर मेरे मतके विपरीत कोई बात मुँहसे निकाली तो मैं तलवारसे तुम्हारा सिर उतार लूँगा।'

वैश्य हँसने लगा। उसने पुनः गौतमको चुनौती देते हुए कहा—'मैं तो धर्मको ही बड़ा मानता हूँ; तुम्हारी जो इच्छा हो, कर लो। जो ब्राह्मण, गुरु, देवता, वेद, धर्म और भगवान् विष्णुकी निन्दा करता है, वह पापाचारी मनुष्य पापरूप है। वह स्पर्श करनेयोग्य नहीं है। धर्मको दूषित करनेवाले उस पापात्मा मनुष्यका परित्याग कर देना चाहिये।' तब ब्राह्मणने कुपित होकर कहा—'यदि तुम धर्मकी प्रशंसा करते हो तो हम दोनोंके प्राणोंकी बाजी लग जाय।' वैश्यने कहा—'ठीक है।' फिर दोनोंने साधारण लोगोंसे प्रश्न किया, परंतु लोगोंने

पहले-जैसा ही उत्तर दिया। तब ब्राह्मणने वहीं गौतमीके तटपर भगवान् योगेश्वरके सामने वैश्यको गिरा दिया और उसकी आँखें निकाल लीं। फिर कहा—'वैश्य! प्रतिदिन धर्मकी प्रशंसा करनेसे ही तुम इस दशाको पहुँचे हो। तुम्हारा धन गया, आँखें गयीं और दोनों हाथ भी जाते रहे। मित्र! अब मैं तुमसे विदा लेता हूँ। फिर कभी भूलकर भी धर्मकी प्रशंसा न करना।' यों कहकर क्रूर गौतम चला गया।

गौतमके चले जानेपर वैश्यप्रवर मणिकुण्डल धन, बाहु और नेत्रोंसे रहित होकर शोकग्रस्त हो गया। तथापि वह निरन्तर धर्मका ही स्मरण करता रहा। अनेक प्रकारकी चिन्ता करते हुए वह भूतलपर निश्चेष्ट होकर पड़ा था। उसके हृदयमें उत्साह नहीं रह गया था। वह शोक-सागरमें डूबा हुआ था। दिन बीता, रजनीका आगमन हुआ और चन्द्रमण्डलका उदय हो गया। उस दिन शुक्लपक्षकी एकादशी थी। एकादशीको वहाँ लंकासे विभीषण आया करते थे। उस दिन भी आये; आकर उन्होंने पुत्र और राक्षसोंसहित गौतमी गंगामें स्नान किया और योगेश्वर भगवान् विष्णुकी विधिपूर्वक पूजा की। विभीषणका पुत्र भी विभीषणके समान धर्मात्मा था। उसे लोग वैभीषणि कहते थे। उसकी दृष्टि उस वैश्यपर पड़ी। वैश्यका सारा वृत्तान्त जानकर उसने अपने पिता विभीषणसे कहा। तब लंकापतिने कहा—'पुत्र! इसी जगह विशल्यकरणी नामकी ओषधि है। उसे ले आकर तुम भगवान्का स्मरण करते हुए इसके हृदयपर रख दो। उसका स्पर्श होते ही वैश्यकी आँखें और हाथ फिर ज्यों-के-त्यों हो जायँगे।'

वैभीषणि अपने पितासे ओषधिका परिचय प्राप्तकर उसकी एक शाखा ले आये और विभीषणके कथनानुसार उसे वैश्यके हृदयपर रख दिया। वैश्य तत्काल पुनः हाथ और नेत्रोंसे युक्त हो गया। मणि, मन्त्र और ओषधियोंके प्रभावको कोई नहीं जानता। वैश्यने धर्मका चिन्तन करते हुए गौतमी गंगामें स्नान किया और योगेश्वर भगवान् विष्णुको नमस्कार करके पुनः आगे बढ़ा। उसने अपने साथ ओषधिकी टूटी हुई शाखा भी ले ली थी।

देश-देशान्तरोंमें भ्रमण करता हुआ मणिकुण्डल एक राजधानीमें पहुँचा, जो महापुरके नामसे विख्यात थी। वहाँके राजा महाराजके नामसे प्रसिद्ध थे। राजाके कोई पुत्र नहीं था, एक पुत्री थी; किंतु उसकी भी आँखें नष्ट हो चुकी थीं। राजाने यह निश्चय कर लिया था कि 'देवता, दानव, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, निर्गुण या गुणवान्—कोई भी क्यों न हो, मैं उसीको यह कन्या दूँगा, जो इसकी आँखें अच्छी कर देगा। कन्या ही नहीं, यह राज्य भी उसीका होगा।' महाराजने यह घोषणा सब ओर करा दी थी। वैश्यने वह घोषणा सुनकर कहा—'मैं निश्चय ही राजकुमारीकी खोयी हुई आँखें पुनः ला दूँगा।' राजकर्मचारी शीघ्र ही वैश्यको महाराजके पास ले गया और उसने उस काष्ठका स्पर्श कराके राजकुमारीके नेत्र ठीक कर दिये। राजाको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने मणिकुण्डलका परिचय पूछा। तब मणिकुण्डलने अपना सारा वृत्तान्त राजासे कह सुनाया। राजाने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार कन्याके साथ ही अपना राज्य भी मणिकुण्डलको दे दिया। इस प्रकार मणिकुण्डलको प्रारम्भमें कष्ट होनेपर भी अन्तमें उसकी धर्मनिष्ठाने उसे न केवल उसकी आँखें और हाथ ही वापस दिलाये, अपितु उसे राज्य भी दिलवाया। इसीलिये शास्त्रोंने कहा है—***'यतो धर्मस्ततो जयः'***।

# भौतिक जगत्पर सूक्ष्म जगत्का प्रभाव

## [ श्रीमाताजीके प्रवचनके आधारपर लिखित ]

( श्रीनलिनीकान्त गुप्त, श्रीअरविन्दाश्रम, पांडिचेरी )

### शारीर चेतनाका विस्तार

हमारे शरीरकी क्रियाओंका क्षेत्र बहुत सीमित है। यदि तुम थोड़ा ध्यानपूर्वक देखो तो तुम देखोगे कि वह क्षेत्र वास्तवमें अत्यन्त संकीर्ण है और हमारी क्षमताएँ एक नन्हेसे वृत्तके अन्दर आबद्ध हैं। हम अपने स्थूल शरीरके ढाँचेसे बँधे हुए हैं। उदाहरणार्थ, हम जब अपने कमरेमें बैठे रहते हैं, तब ठीक उसी समय खेलके मैदानमें व्यायाम भी नहीं कर सकते। अगर तुम एक कोई काम करना चाहो तो तुम दूसरा नहीं कर सकते; यदि तुम एक स्थानमें हो तो तुम साथ-ही-साथ किसी दूसरे स्थानमें नहीं रह सकते। कितना आसान होता यदि हम अपनी मेजपर लिखते समय तुरंत बिना चले-फिरे या किसीकी सहायता लिये दूर रखी आलमारीसे देखनेके लिये कोई पुस्तक ले लेते! और फिर भी यह बात कितनी अधिक असम्भव है! हमें ज्ञात है कि भूत-प्रेत बुलानेकी बैठकोंमें कितनी असाधारण बातें घटित होती हैं और उन्हें शरीरकी इन्द्रियोंकी साधारण क्रियाके द्वारा नहीं समझाया जा सकता। उनकी व्याख्या यह कहकर दी जाती है कि प्रेतलोकके हस्तक्षेपके कारण वे घटित होती हैं। परंतु सच पूछा जाय तो उन मामलोंमें साधारणतया भूत-प्रेतोंका कोई विशेष हाथ नहीं होता। वे किसी मृतात्माकी क्रिया भी नहीं होतीं, बल्कि सामान्य मानवी शक्तियोंकी ही क्रिया होती हैं—विशेषत: प्राणगत या जीवनी-शक्तिकी क्रिया होती हैं, जो शरीरके बन्धनसे मुक्त होती और स्वतन्त्र रूपसे अपनी क्षमताका प्रयोग करती हैं। यहाँ जो कुछ मैं कहना चाहती हूँ, उसे समझनेमें एक उदाहरण, जो कि एक सच्ची घटना है, अच्छी सहायता करेगा।

पेरिसमें एक युवक रहता था, जो रेलवे स्टेशनपर क्लर्कका काम करता था। वहाँपर कभी-कभी उसकी माँ और उसकी प्रेयसी उससे मिलने आया करती थीं। एक दिन वह उनके आनेकी आशा करता था और रेलगाड़ीके आनेके समयकी प्रतीक्षा कर रहा था। उस समय वह अपनी मेजपर बड़ी तल्लीनताके साथ काम कर रहा था; परंतु सहसा गाड़ी आनेके समयके लगभग उसके आसपासके लोगोंने देखा कि उसने एक चीखके साथ अपनी मेजपर झुककर सिर रख दिया और वहीं पड़ा रहा। वह एकदम अचेतन हो गया। इसी बीच दूसरी ओर एक भीषण रेलवे दुर्घटना हो गयी; वे दोनों स्त्रियाँ उस दुर्घटनामें पड़ गयीं। गाड़ीके डिब्बे चकनाचूर हो गये और सभी यात्री निहत या सांघातिकरूपसे आहत हो गये। परंतु, विचित्र बात थी, उसकी प्रेयसी युवती स्त्री जीती हुई और लगभग बेदाग पायी गयी। वह जहाँ गिरी थी, वहाँ उसके ऊपर एक लोहेकी धरन आ गिरी थी और उसके लिये उसके नीचे थोड़ी-सी रक्षाकी जगह बन गयी थी और फिर धरनके ऊपर माल-मलबा आ गिरा था। कूड़ा-करकट हटाकर उसे बाहर निकाला गया और मुश्किलसे कहीं उसे जरा-सी खुरचन लगी थी। परंतु अब सुनिये उस युवककी कहानी। उसने बतलाया कि जब वह अपनी मेजपर काम कर रहा था, तभी उसने अचानक अपनी प्रेयसीकी आवाज सुनी, जो सहायताके लिये उसे पुकार रही थी। उसने मानो एक चमकके अन्दर उसकी सारी हालत देख ली और वह दौड़ पड़ा, अवश्य ही शरीरसे नहीं, और वहाँ पहुँचकर उसने अपनी प्रेयसीको बचानेके लिये उसके शरीरके ऊपर अपने-आपको फेंक दिया; बस इतना ही वह कर सका। इसके फलस्वरूप निस्सन्देह उसने उसकी रक्षा की। सच है कि वह अपने शरीरसे नहीं दौड़ा; उस कार्यके लिये यदि वह शरीरसे दौड़ा होता, तो उसका कोई फल न हुआ

होता। उसके अन्दरसे जो चीज निकल भागी, वह था उसका प्राण-देह, उस प्राण-शक्तिकी एक रचना, जो शरीरके अत्यन्त निकट होती है और लगभग उतनी ही ठोस होती है, जितनी कि शरीरकी शक्ति, पर होती है उससे बहुत अधिक शक्तिशाली और प्रभावशाली। उसके अन्दरसे केन्द्रीभूत होकर निकली हुई यह प्राणशक्ति ही उस औरतको बचानेवाली सच्ची ढाल बन गयी। विचित्र बात एक यह हुई कि स्वयं उस युवकके सिरपर घावके चिह्न उत्पन्न हो गये, मानो उसके सिरपर कोई बहुत भारी बोझ आ गिरा हो। प्राणशक्तिके ऊपर जब कोई प्रबल धक्का पहुँचता है, तब उसका दाग स्थूल शरीरपर भी पड़ सकता है और पड़ता ही है। यह कोई असामान्य घटना नहीं है। कहा जाता है कि बहुत-से ईसाई साधुओंके (जैसे सन्त फ्रांसिसके) शरीरपर ईसाके शरीरके शूलीके चिह्न निकल आये थे। कहा जाता है कि रामकृष्णके सामने जब एक बच्चेपर कोड़े लगाये गये तो उन्होंने दिखाया कि उसके दाग उनकी पीठपर भी उठ आये थे।

इन सब बातोंका तात्पर्य यह है कि मनुष्यके लिये भौतिक जगत्‌में कार्य करनेका एकमात्र साधन स्थूलशरीर ही नहीं है; भौतिक शरीर अधिकाधिक सूक्ष्म क्रियाओंके अन्दर फैलता और विस्तारित होता जाता है और फिर उसी कारण वह किसी अंशमें कम नहीं, बल्कि कहीं अधिक सफलरूपसे कार्य करनेके योग्य बनता जाता है। भौतिक शरीरके पीछे सूक्ष्म शरीर विद्यमान है, फिर उसके पीछे प्राण-शरीर है और फिर प्राणके विभिन्न स्तर हैं। निस्संदेह सम्पूर्णरूपसे प्राण-शक्ति ही हमारी सभी शारीरिक क्रियाओंको चलानेवाली सच्ची शक्ति होती है और यदि वह सामान्यतः अपने शरीर यन्त्रोंके द्वारा कार्य करती है तो वह इनसे स्वतन्त्र रहकर भी कार्य कर सकती है। सामान्य अवस्थाओंमें भी वह इस ढंगसे प्रायः ही कार्य करती रहती है। बस, हम उसे देखनेके लिये या तो सचेतन नहीं रहते अथवा उधर दृष्टि ही नहीं देते। अगर कोई सचेतन रूपसे अपनी प्राण-शक्तिपर एकाग्र हो और किसी स्थूल वस्तुपर उसका प्रयोग करे तो वह उसपर वैसे ही सफलतापूर्वक क्रिया कर सकता है जैसे कि कोई भौतिक शक्ति करती है। जब उस शक्तिको किसी भौतिक परिस्थितिकी आवश्यकता होती है, तब वह उसे उत्पन्न कर लेती है, जैसे कि उस युवककी संरक्षणकारिणी प्राण-शक्तिने भौतिक वस्तुओंकी एक ऐसी अवस्था कर ली, जो उस लड़कीके लिये एक आश्रय बन गयी।

इस वर्तमान प्रसंगमें सारी घटना अपने-आप घटी; उससे सम्बन्धित लोगोंने पहलेसे उस बातपर कोई ध्यान नहीं किया; उन दोनोंके बीच संवेदना इतनी प्रबल थी कि उसके विरुद्ध अन्य कोई विचार नहीं उठे। यहाँ यह कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं कि यदि कोई ज्ञानपूर्वक इस गुह्य शक्तिपर अपना अधिकार जमाना चाहे तो उसे एक बड़ी लम्बी और कठिन साधना करनी होगी। परंतु कठिन होनेपर भी उसे प्राप्त करना असम्भव नहीं है। शरीरकी क्रियाओंका भी जहाँतक सम्बन्ध है, कोई विशेष प्रकारका विकास इस समय तुम्हारी पहुँचके परे मालूम हो सकता है; परंतु यदि तुम अभ्यास करो और अनवरत लगे रहो, अटूट संकल्प बनाये रखो और सुयोग्य पथप्रदर्शन प्राप्त करो, तो तुम केवल उस लक्ष्यतक ही नहीं पहुँच जाओगे, बल्कि उससे भी कहीं आगे चले जाओगे। ओलम्पिक खेलोंमें जिन लोगोंने रेकर्ड तोड़े हैं, उनकी कहानियोंसे इस बातपर काफी प्रकाश पड़ सकता है। उसी तरह मनुष्य सूक्ष्म शक्तियोंको भी अधिकृत कर सकता है, यदि कोई सच्चे मनसे प्रयास करे और समुचित पथका अनुसरण करे। अवश्य ही ऐसा करना बहुत अधिक कठिन है—शायद उससे भी कहीं अधिक कठिन है; परंतु यदि किसीमें संकल्प-शक्ति हो तो उसका रास्ता भी अवश्य ही खुला हुआ है।

# होलीके त्यौहारपर हमारा कर्तव्य

( नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार )

इसमें कोई सन्देह नहीं कि होली हिन्दुओंका बहुत पुराना त्यौहार है; परंतु इसके प्रचलित होनेका प्रधान कारण और काल कौन-सा है, इसका एकमतसे अबतक कोई निर्णय नहीं हो सका है। इसके बारेमें कई तरहकी बातें सुननेमें आती हैं, सम्भव है, सभीका कुछ-कुछ अंश मिलकर यह त्यौहार बना हो। पर आजकल जिस रूपमें यह मनाया जाता है, उससे तो धर्म, देश और मनुष्यजातिको बड़ा ही नुकसान पहुँच रहा है। इस समय क्या होता है और हमें क्या करना चाहिये, यह बतलानेके पहले, होली क्या है? इसपर कुछ विचार किया जाता है। संस्कृतमें 'होलका' अधपके अन्नको कहते हैं। वैद्यकके अनुसार 'होला' स्वल्प बात है और मेद, कफ तथा थकावटको मिटाता है। होलीपर जो अधपके चने या गन्ने लाठीमें बाँधकर जलती हुई होलीकी लपटमें सेंककर खाये जाते हैं, उन्हें 'होला' कहते हैं। कहीं-कहीं अधपके नये जौकी बालें भी इसी प्रकार सेंकी जाती हैं। सम्भव है वसन्तऋतुमें शरीरके किसी प्राकृतिक विकारको दूर करनेके लिये होलीके अवसरपर होला चबानेकी प्रथा चली हो और उसीके सम्बन्धमें इसका नाम 'होलिका', 'होलाका' या 'होली' पड़ गया हो।

होलीका एक नाम है **'वासन्ती नवशस्येष्टि।'** इसका अर्थ 'वसन्तमें पैदा होनेवाले नये धानका यज्ञ' होता है, यह यज्ञ फाल्गुन शुक्ल १५ को किया जाता है। इसका प्रचार भी शायद इसीलिये हुआ हो कि ऋतु-परिवर्तनके प्राकृतिक विकार यज्ञके धुएँसे नष्ट होकर गाँव-गाँव और नगर-नगरमें एक साथ ही वायुकी शुद्धि हो जाय। यज्ञसे बहुत-से लाभ होते हैं। पर यज्ञधूमसे वायुकी शुद्धि होना तो प्रायः सभीको मान्य है अथवा नया धान किसी देवताको अर्पण किये बिना नहीं खाना चाहिये, इस शास्त्रोक्त हेतुको प्रत्यक्ष दिखलानेके लिये सारी जातिने एक दिन ऐसा रखा हो, जिस दिन देवताओंके लिये देशभरमें नये धानसे यज्ञ किया जाय। आजकल भी होलीके दिन जिस जगह काठ-कंडे इकट्‌ठे करके उसमें आग लगायी जाती है, उस जगहको पहले साफ करते और पूजते हैं और सभी ग्रामवासी उसमें कुछ-न-कुछ होमते हैं, यह शायद उसी **'नवशस्येष्टि'** का बिगड़ा हुआ रूप हो। सामुदायिक यज्ञ होनेसे अब भी सभी लोग उसके लिये पहलेसे होमनेकी सामग्री घर-घरमें बनाने और आसानीसे वहाँतक ले जानेके लिये उसकी मालाएँ गूँथकर रखते हैं।

इसके अतिरिक्त इस त्यौहारके साथ ऐतिहासिक, पारमार्थिक और राष्ट्रीय तत्त्वोंका भी सम्बन्ध मालूम होता है। कहा जाता है कि भक्तराज प्रह्लादकी अग्निपरीक्षा इसी दिन हुई थी। प्रह्लादके पिता दैत्यराज हिरण्यकशिपुने अपनी बहन 'होलका'से (जिसको भगवद्भक्तके न सतानेतक अग्निमें न जलनेका वरदान मिला हुआ था।) प्रह्लादको जला देनेके लिये कहा, होलका राक्षसी उसे गोदमें लेकर बैठ गयी, चारों तरफ आग लगा दी गयी। प्रह्लाद भगवान्‌के अनन्य भक्त थे, वे भगवान्‌का नाम रटने लगे। भगवत्कृपासे प्रह्लादके लिये अग्नि शीतल हो गयी और वरदानकी शर्तके अनुसार 'होलका' उसमें जल मरी। भक्तराज प्रह्लाद इस कठिन परीक्षामें उत्तीर्ण हुए और आकर पितासे कहने लगे—

**राम नामके जापक जन हैं तीनों लोकोंमें निर्भय।**
**मिटते सारे ताप नामकी औषधसे पक्का निश्चय॥**
**नहीं मानते हो तो मेरे तनकी ओर निहारो तात।**
**पानी पानी हुई आग है जला नहीं किञ्चित् भी गात॥***

इन्हीं भक्तराज और इनकी विशुद्ध भक्तिका स्मारकरूप यह होलीका त्यौहार है। आज भी 'होलिका-दहन'के समय प्रायः सब मिलकर एक स्वरमें 'भक्तवर प्रह्लादकी जय' बोलते हैं। हिरण्यकशिपुके राजत्वकालमें अत्याचारिणी होलिकाका दहन हुआ और भक्ति तथा भगवन्नामके अटल प्रतापसे दृढ़व्रत भक्त प्रह्लादकी रक्षा हुई और उन्हें भगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शन हुए।

इसके सिवा इस दिन सभी वर्णके लोग भेद छोड़कर परस्पर मिलते-जुलते हैं। शायद किसी जमानेमें इसी विचारसे यह त्यौहार बना हो कि सालभरके विधि-निषेधमय जीवनको अलग-अलग अपने-अपने कामोंमें

* रामनाम जपतां कुतो भयं सर्वतापशमनैकभेषजम्। पश्य तात मम गात्रसन्निधौ पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना॥

बिताकर इस एक दिन सब भाई परस्पर गले लगकर प्रेम बढ़ावें। कभी भूलसे या किसी कारणसे किसीका मनोमालिन्य हो गया हो तो उसे इस आनन्दके त्यौहारमें सब एक साथ मिल-जुलकर हटा दें। असलमें एक ऐसा राष्ट्रीय उत्सव होना भी चाहिये कि जिसमें सभी लोग छोटे-बड़े और राजा-रंकका भेद भूलकर बिना किसी भी रुकावटके शामिल होकर परस्पर प्रेमालिंगन कर सकें। यही होलीका ऐतिहासिक, पारमार्थिक और राष्ट्रीय तत्त्व मालूम होता है।

जो कुछ भी हो, इन सारी बातोंपर विचार करनेसे यही अनुमान होता है कि यह त्यौहार असलमें मनुष्यजातिकी भलाईके लिये ही चलाया गया था, परंतु आजकल इसका रूप बहुत ही बिगड़ गया है। इस समय अधिकांश लोग इसको जिस रूपमें मनाते हैं, उससे तो सिवा पाप बढ़ने और अधोगति होनेके और कोई अच्छा फल होता नहीं दीखता। आजकल क्या होता है?

कई दिनों पहलेसे कहीं-कहीं स्त्रियाँ गन्दे गीत गाने लगती हैं, पुरुष बेशरम होकर गन्दे अश्लील गीत, धमाल, रसिया और फाग गाते हैं। स्त्रियोंको देखकर बुरे-बुरे इशारे करते और आवाजें लगाते हैं। डफ बजाकर बुरी तरहसे नाचते और बड़ी गन्दी-गन्दी चेष्टाएँ करते हैं। भाँग, गाँजा, सुल्फा और माँजू आदि पीते तथा खाते हैं। कहीं-कहीं शराब और वेश्याओंतककी धूम मचती है। भाभी, चाची, साली, सालेकी स्त्री, मित्रकी स्त्री, पड़ोसिन और पत्नी आदिके साथ निर्लज्जतासे फाग खेलते और गन्दे-गन्दे शब्दोंकी बौछार करते हैं। राख, मिट्टी और कीचड़ उछाले जाते हैं, मुँहपर स्याही, कारिख या नीला रंग पोत दिया जाता है। कपड़ोंपर और दीवारोंपर गन्दे शब्द लिख दिये जाते हैं, टोपियाँ और पगड़ियाँ उछाल दी जाती हैं, लोगोंके घरोंपर जाकर गन्दी आवाजें लगायी जाती हैं। फल क्या होता है? गन्दी और अश्लील बोलचाल और गन्दे व्यवहारसे ब्रह्मचर्यका नाश होकर स्त्री-पुरुष व्यभिचारके दोषसे दोषी बनते हैं। शास्त्रमें कहा है—

**स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।**
**सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च॥**
**एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः।**
**विपरीतं ब्रह्मचर्यमनुष्ठेयं मुमुक्षुभिः॥**

(१) किसी भी स्त्रीको किसी अवस्थामें भी याद करना, (२) उसके रूप-गुणोंका वर्णन करना, स्त्रीसम्बन्धी चर्चा करना या गीत गाना, (३) स्त्रियोंके साथ ताश, चौपड़, फाग आदि खेलना, (४) स्त्रियोंको देखना, (५) स्त्रीसे एकान्तमें बातें करना, (६) स्त्रीको पानेके लिये मनमें संकल्प करना, (७) पानेके लिये प्रयत्न करना और (८) सहवास करना—ये आठ प्रकारके मैथुन विद्वानोंने बतलाये हैं, कल्याण चाहनेवालेको इन आठोंसे बचना चाहिये। इसके सिवा ऐसे आचरणोंसे निर्लज्जता बढ़ती है, जबान बिगड़ जाती है, मनपर बुरे संस्कार जम जाते हैं, क्रोध बढ़ता है, परस्परमें लोग लड़ पड़ते हैं, असभ्यता और पाशविकता भी बढ़ती है। अतएव सभी स्त्री-पुरुषोंको चाहिये कि वे इन गन्दे कामोंको बिलकुल ही न करें। इनसे लौकिक और पारमार्थिक दोनों तरहके नुकसान होते हैं। फिर क्या करना चाहिये? फागुन सुदी ११ से चैत वदी १ तक नीचे लिखे काम करने चाहिये।

(१) फागुन सुदी ११ को या और किसी दिन भगवान्‌की सवारी निकालनी चाहिये, जिनमें सुन्दर-सुन्दर भजन और नाम-कीर्तन हो।

(२) सत्संगका खूब प्रचार किया जाय। स्थान-स्थानमें इसका आयोजन हो। सत्संगमें ब्रह्मचर्य, अक्रोध, क्षमा, प्रमादके त्याग, नाम-माहात्म्य और भक्तिकी विशेष चर्चा हो।

(३) भक्ति और भक्तकी महिमाके तथा सदाचारके गीत गाये जायँ।

(४) फागुन सुदी १५ को हवन किया जाय।

(५) श्रीमद्भागवत और श्रीविष्णुपुराण आदिसे प्रह्लादकी कथा सुनी और सुनायी जाय।

(६) साधकगण एकान्तमें भजन-ध्यान करें।

(७) श्रीश्रीचैतन्यदेवकी जन्मतिथिका उत्सव मनाया जाय। महाप्रभुका जन्म होलीके दिन ही हुआ था। इसी उपलक्ष्यमें मुहल्ले-मुहल्ले घूम-घूमकर नामकीर्तन किया जाय। घर-घरमें हरिनाम सुनाया जाय।

(८) धुरेण्डीके दिन ताल, मृदंग और झाँझ आदिके साथ बड़े जोरसे नगरकीर्तन निकाला जाय, जिसमें सब जाति और सभी वर्णोंके लोग बड़े प्रेमसे शामिल हों।

हमारे आन्तरिक शत्रु—

# जब अपवित्र विचार घेरते हैं!

## [ काम, कारण और निवारण ]

( श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट )

**राही कहीं है, राह कहीं, राहबर कहीं,**
**ऐसे भी कामयाब हुआ है सफ़र कहीं!**

अपवित्र विचार क्यों आते हैं, कहाँसे आते हैं, कब आते हैं? उनका उद्‌गम कहाँ है?

इस किलेपर हमला करनेके लिये इन सब बातोंकी जानकारी जरूरी है।

× × ×

यहाँ एक बात समझ लेनी चाहिये कि अपवित्र विचारोंसे घिर जाना एक बात है और अपने-आपको उनसे घेर लेना सर्वथा दूसरी बात।

प्राय: होता यह है कि हम स्वयं अपनेको अपवित्र विचारोंसे घेरे रखते हैं। मकड़ीकी तरह हम खुद अपने चारों ओर यह जाला तानते हैं और उसमें फँस जानेपर रोते हैं कि हाय! हम कहाँ फँस गये!

यों, कभी-कभी ऐसा भी होता है कि न चाहते हुए भी अपवित्र विचार हमें घेर लेते हैं—

**'अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजित:॥'**

यह ठीक है कि एक स्थिति दूसरीसे कुछ अच्छी है, विकार स्वत: आकर घेर लें, उसकी अपेक्षा जान-बूझकर विकारग्रस्त होना बहुत बुरा है, परंतु चाहे खरबूजा छुरीपर गिरे, चाहे छुरी खरबूजेपर—खरबूजेको हलाल होना ही है! प्राणायाम चाहे सीधा हो चाहे द्राविड़, फल दोनोंका एक ही होता है।

× × ×

जैसे भी हो, हमें अपवित्र विचारोंसे मुक्त होना ही है।

× × ×

अपवित्र विचार दो तरफसे आते हैं—भीतरसे और बाहरसे।

हृदय जबतक मलिन है, उसमें विषय-भोगकी लालसा छिपी बैठी है, गन्दी वासनाएँ भरी पड़ी हैं, विषयोंका रस बना हुआ है—तबतक अपवित्र विचारोंका आना स्वाभाविक है।

हृदय शुद्ध हो जाय, उसकी वासनाएँ निर्मूल हो जायँ, उसकी गन्दगी जाती रहे, विषयोंका रस नष्ट हो जाय, फिर अपवित्र विचार आ ही नहीं सकते।

× × ×

बाहरसे आनेवाले अपवित्र विचार संसर्ग-दोषसे आते हैं।

हम जो देखते हैं, जो पढ़ते हैं, जो सूँघते हैं, जो चखते हैं, जो छूते हैं, जिस वातावरणमें रहते हैं—वह यदि विकारोत्तेजक होता है, तो अपवित्र विचार आये बिना नहीं रहते।

विषयोंके पिछले संस्कार, उनकी स्मृतियाँ भी अपवित्र विचारोंको जन्म देती रहती हैं।

हमारा वातावरण पवित्र हो, हम पवित्र प्राणी-पदार्थोंके सम्पर्कमें आयें, हम पवित्र विषयोंको ही ग्रहण करें, पवित्र वस्तुएँ ही देखें, चखें, सूँघें, छुएँ और पवित्र बातें ही सुनें, तो अपवित्र विचारोंकी कन्नी अपने-आप ही कट जाय।

× × ×

अपवित्र विचारोंसे मुक्त होनेके लिये हमें पहले बाहरी मोर्चा फतेह करना पड़ेगा, फिर भीतरी।

पहले अपनेको अपवित्र संसर्गसे दूर रखना होगा, फिर हृदयके भीतर भरे पुराने कूड़े-कचरेको धो बहाना होगा।

बाहरसे हमने अपनेको शुद्ध कर लिया, पर भीतर-ही-भीतर हम यदि भोगोंमें रस लेते रहे तो कभी भी, किसी भी क्षण हम गिर सकेंगे। तब तो हमपर शेखकी वही उक्ति फलेगी—

**बाकी है दिलमें शेखके, हसरत गुनाहकी,**
**काला करेगा मुँह भी, जा दाढ़ी सियाह की।**

प्रायः यही होता है कि हम स्वयं ही अपनेको अपवित्र विचारोंसे घेर लेते हैं। हम खुद अपवित्र वातावरणमें बैठते हैं और अपवित्र चर्चामें रस लेने लगते हैं। हम ऐसे प्राणी-पदार्थोंके सम्पर्कमें चले जाते हैं, जो मलिन वासनाओंको जाग्रत् करते हैं।

और तब पतनकी ओर जाना क्या कठिन है?

कहा ही है—

**काजरकी कोठरीमें कैसोहू सयानो जाय**

**एक लीक काजरकी लागिहै पै लागिहै॥**

× × ×

विचारोंके घोड़े इतनी तेजीसे दौड़ते हैं कि देखकर आश्चर्य होता है। कभी-कभी इनका पीछा करता हूँ तो सन्न रह जाना पड़ता है मुझे। पलभरमें सारी दुनियाका चक्कर मार आते हैं।

अभी पटनामें हैं, पलक मारते कलकत्तामें। जो स्थान कभी देखे भी नहीं, वहाँ भी जाते देर नहीं लगती।

और समयका पैमाना तो इनके लिये कुछ है ही नहीं। हृदयमें न जाने कितनी स्मृतियाँ, कितने संस्कार दबे पड़े हैं! कौन विचार स्मृतियोंकी किस लड़ीको खींच लायेगा, नहीं कहा जा सकता।

× × ×

कोई भी अपवित्र कार्य पहले अपवित्र विचारके रूपमें ही जन्म लेता है, फिर बढ़ते-बढ़ते मानवको पतनके गड़हेमें ढकेल देता है।

स्वामी शिवानन्द सरस्वतीने ठीक ही लिखा है—

"Evil thinking is the beginning and starting point of adultery."

'अपवित्र विचारोंसे ही व्यभिचारका आरम्भ होता है।'

× × ×

इसीकी पेशबन्दीके लिये ईसाने कहा है—

"Ye have heard that it was said by them of old time. Thou shalt not commit adultery. But I say unto you, that whosoever looketh on a woman to lust after her hath committed adultery with her already in heart.

"And if thy right eye offend thee, pluck it out, and cast it from thee; for it is profitable for thee that one of thy members should perish, and not that thy whole body should be cast into hell.

"And, if thy right hand offend thee, cut it off, and cast it from thee: for it is profitable for thee that one of thy members should perish, and not that thy whole body should be cast into hell."

—St. Mathew. 5. 28-30

'बुजुर्गोंने कहा है कि तुम व्यभिचार मत करो, पर मैं कहता हूँ कि यदि कोई पुरुष किसी स्त्रीके प्रति कुदृष्टि डालता है, तो हृदयमें उसने उसके साथ व्यभिचार कर लिया।

और यदि तेरी दाहिनी आँख शरारत करती है, उसे निकाल डाल, दाहिना हाथ बदमाशी करे तो उसे काटकर फेंक दे, क्योंकि सारा शरीर नरककी यन्त्रणा भोगे, उससे तो अच्छा यही है कि शरीरका एकाध अंग ही उसका दण्ड भोगे।'

× × ×

और ऐसा किया है लोगोंने।

कहते हैं कि राजस्थानकी एक राजपूत कुमारीने अपने उस हाथको काटकर फेंक दिया था, जिसे उसके बहनोईने विकारग्रस्त होकर छू लिया था।

× × ×

तपस्वी जुन्नूनके बारेमें कहा जाता है कि एक दिन वे घूमते-घामते एक पहाड़पर जा पहुँचे।

वहाँ उन्होंने देखा कि एक झोपड़ी है, जिसके दरवाजेमें एक आदमी बैठा हुआ है।

उस आदमीका एक पैर भीतर था और दूसरा बाहर कटा पड़ा था, जिसमें लाखों चींटियाँ चिपटी हुई थीं।

जुन्नूनकी जिज्ञासा बढ़ी।

उसे प्रणामकर उन्होंने पूछा—'भैया! यह क्या बात है?'

वह बोला—भैया! अभी एक दिनकी बात है, मैं यहीं बैठा था कि सामनेसे एक युवती निकली, जिसे देखकर मेरा चित्त चंचल हो उठा। उसे और अच्छी तरह देखनेके लिये मैं उठ पड़ा और जैसे ही मैंने अपना एक पैर कुटियाके बाहर निकाला कि मुझे यह आकाशवाणी सुन पड़ी—

अरे साधु, तूने सारी शर्म धोकर पी ली है! तीस सालसे तू यहाँ साधना कर रहा है। लोग तुझे 'भक्त' कहकर पुकारते हैं। फिर भी तू आज शैतानके चक्करमें फँसने जा रहा है।

यह सुनते ही मेरा शरीर काँप उठा। सचमुच मैं महान् अनर्थ करने जा रहा था। मैंने तुरत उस पैरको काटकर बाहर फेंक दिया, जो विकारग्रस्त होकर कुटियासे बाहर निकला था।

× × ×

बिल्वमंगलने आँखोंके द्वारा विकार आनेसे आँखें ही फोड़ डाली थीं।

× × ×

है हममें-आपमें ऐसा साहस?

परंतु, सन्तोंकी कसौटी यही है।

तुकाराम कहते हैं—

**पापाची वासना नको दावूं डोळां**
**त्याहुनी अंधळा बराच मी।**
**निंदेचे श्रवण नको माझे कानीं**
**बधिर करोनि ठेवीं देवा॥**
**अपवित्र वाणी नको माझ्या मुखा**
**त्याजहुनि मूका बराच मी।**
**नको मज कधी पर स्त्रीसंगति**
**जनांतूनि माती उठतां भली॥**

पापदृष्टिसे किसीको देखूँ, उससे मेरा अन्धा हो जाना भला!

कानोंसे किसीकी निन्दा सुनूँ, उससे मेरा बहरा हो जाना भला!

मेरे मुखसे अपवित्र वाणी निकले, उससे मेरा गूँगा हो जाना भला!

विकारग्रस्त होऊँ, उससे अच्छा है पृथ्वीसे मेरे शरीरका ही उठ जाना!

× × ×

स्वामी रामतीर्थने लिखा है*—

रामका मन एक बार बिगड़ गया। लाहौरमें अपने कोठेपर चढ़ा था। वहाँसे उसने किसी स्त्रीको नग्न देखा, जिससे उसका मन बिगड़ा। मगर मनकी इस अवस्थाको देखकर वह तत्काल छाती कूटने और रोने लगा और उस दिनसे इस बातका पक्का इरादा कर लिया कि 'या तो हम मरेंगे या मनको मारेंगे।'

और हठी राम मनको मारकर ही माने!

× × ×

सारी शैतानी तो मनकी है। मनके माध्यमसे शैतान बहकाता है—इसे देख, इसे ले, इसे सूँघ, इसे सुन, इसे छू!

इन्द्रियोंने जहाँ मनकी बात सुनी, उसके बहकावेपर ध्यान दिया कि पतनका दरवाजा खुला!

जरा चूके कि गये!

× × ×

सारे अनर्थोंकी शुरुआत किसी-न-किसी अपवित्र विचारसे होती है।

विषयोंका ध्यान किया नहीं, उनपर सोचना शुरू किया नहीं कि आनन-फानन इन्द्रियाँ बहकना शुरू कर देती हैं, और वे बहकी नहीं कि गिरते क्या देर लगती है!

हृदयमें जहाँ अपवित्र विचार पनपा कि पतनका मार्ग प्रशस्त हुआ।

इसीलिये जरूरत है कि शुरूमें ही अपवित्र विचारकी जड़ काट दी जाय। पलभरका भी विलम्ब लगाये बिना उसे बेरहमीसे काटकर फेंक दिया जाय।

जरा-सी गफलत की कि शैतानने अपना जाल फैलाया। देखते-देखते वह इतना मजबूत हो जाता है कि बादमें उसे उखाड़ फेंकना बहुत कठिन हो जाता है।

* फैजाबादका वार्तालाप १२।९।१९०५

'उँगली पकड़कर पहुँचा पकड़ना' तो शैतानके लिये आम बात है।

× × ×

वह सोचना ही गलत है कि उँह, इतनी मामूली बातमें क्या हो जायगा। किसीको जरा देख लेनेसे, किसीकी जरा-सी खुशबू ले लेनेसे, कुछ चीज खा लेनेसे, किसीको जरा-सा छू लेनेसे क्या बिगड़ता है?

जी नहीं, ऐसा नहीं है।

**बकरी पाती खाति है, ताहि सतावै काम।**
**नितप्रति हलुआ निगलते, तिनकी जानै राम॥**

रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्शकी तो बात ही क्या, सिर्फ चिन्तनसे लुटिया डूब जा सकती है।

कबीरने गलत थोड़े ही लिखा है—

**जहाँ जलायी सुंदरी, तहँ जिन जाहु कबीर।**
**उड़ि भभूत अंगन लगे, सूना करे सरीर॥**

× × ×

'जब जलायी गयी स्त्रीकी राखकी यह दशा है, तब रसपूर्वक स्त्री-संसर्गमें रहनेवाले मनकी क्या दशा होगी? परस्त्रीके साथ कभी एकान्तमें न रहो। प्रयोजनके बिना उससे व्यर्थ बातें न करो, परस्त्रीकी ओर देखनेमात्रसे विकार उत्पन्न होता है, बात करनेसे बढ़ता है, स्पर्श करनेसे पूर्णताको पहुँचता है।····तुम परस्त्रीके साथ गाते हो, नाचते हो, कूदते हो, एकान्तमें बातें करते हो, सोते-बैठते हो—अरे मूर्ख! यह तुम्हारे विनाशका मार्ग है। तुम समझते हो कि इससे तुम्हारा क्या होता है? अरे मूर्ख! तुम्हारी अपेक्षा अनेक गुने अधिक शक्तिशाली मायाके मोहसे मार्गभ्रष्ट होकर धूलमें मिल गये। फिर तुम्हारी क्या गिनती? मायिक पदार्थोंमें एक विशेषता यह है कि जैसे ही प्रेमसे तुमने उनकी ओर देखा या सुना कि फँसे और फँसनेपर धीरे-धीरे ऐसे गहरे गढ़ेमें गिरोगे कि जहाँसे निकलना बहुत ही कठिन होगा।'*

ठीक ही कहा गया है—

**घृतकुम्भसमा नारी तप्ताङ्गारसमः पुमान्।**
**तस्माद् घृतं च वह्निं च नैकत्र स्थापयेद् बुधः॥**

आग और घीका सम्पर्क कब भभक उठेगा, कोई नहीं कह सकता। ऐसे मौकोंपर कोई यदि बचता है तो भगवान्की कृपासे। अन्यथा, दुर्बल मानवमें ऐसी शक्ति कहाँ?

× × ×

महात्मा गांधीने लिखा है कि 'रामनामने ही मेरी रक्षा की, नहीं तो, दो-तीन बहिनोंको मैं बहिन कहने लायक नहीं रह जाता!'

## काम-प्रभावसे भगवान् ही बचाते हैं

**भए कामबस जोगीस तापस पावँरन्हि की को कहै। देखहिं चराचर नारिमय जे ब्रह्ममय देखत रहे॥**
**अबला बिलोकहिं पुरुषमय जगु पुरुष सब अबलामयं। दुइ दंड भरि ब्रह्मांड भीतर कामकृत कौतुक अयं॥**
**धरी न काहूँ धीर सब के मन मनसिज हरे।**
**जे राखे रघुबीर ते उबरे तेहि काल महुँ॥**

[कामदेवद्वारा शिवजीकी तपस्या भंग करनेके प्रयासके सन्दर्भमें गोस्वामीजी कहते हैं—] जब योगीश्वर और तपस्वी भी कामके वश हो गये, तब पामर मनुष्योंकी कौन कहे? जो समस्त चराचर जगत्को ब्रह्ममय देखते थे, वे अब उसे स्त्रीमय देखने लगे। स्त्रियाँ सारे संसारको पुरुषमय देखने लगीं और पुरुष उसे स्त्रीमय देखने लगे। दो घड़ीतक सारे ब्रह्माण्डके अन्दर कामदेवका रचा हुआ यह कौतुक (तमाशा) रहा। किसीने भी हृदयमें धैर्य नहीं धारण किया, कामदेवने सबके मन हर लिये। श्रीरघुनाथजीने जिनकी रक्षा की, केवल वे ही उस समय बचे रहे। **[ श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड ]**

* श्रीमगनलाल हरिभाई व्यास 'सत्संगमाला'।

साधकोंके प्रति—

# मुक्तिका रहस्य

( ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज )

हम सबके अनुभवकी बात है कि जब गाढ़ नींद आती है, तब कुछ भी याद नहीं रहता। रुपये, पदार्थ, कुटुम्ब, जमीन, मकान आदि कुछ भी याद नहीं रहता। ऐसी स्थितिमें हमें कोई दु:ख होता है क्या? गाढ़ नींदमें किसी भी प्राणी-पदार्थका सम्बन्ध न रहनेपर भी हमें दु:ख नहीं होता, अपितु सुख ही होता है। इससे सिद्ध हुआ कि संसारके सम्बन्धसे सुख नहीं होता। अभी आप सोचते हैं कि हमें धन मिल जाय, ऊँचा पद मिल जाय, मान-बड़ाई मिल जाय, भोग मिल जाय, आराम मिल जाय तो हम सुखी हो जायँगे। विचार करें कि जब गाढ़ निद्रामें किसी भी प्राणी-पदार्थसे सम्बन्ध न रहनेपर भी दु:ख नहीं होता, और सुख होता है, तब इन वस्तुओंकी प्राप्तिसे सुख मिल जायगा क्या? इस बातपर गहरा विचार करें।

जाग्रत्‌की वस्तु स्वप्नमें और स्वप्नकी वस्तु सुषुप्तिमें नहीं रहती। तात्पर्य यह कि जाग्रत् और स्वप्नकी वस्तुओंके बिना भी हम रहते हैं। इससे सिद्ध यह हुआ कि वस्तुओंके बिना भी हम सुखपूर्वक रह सकते हैं अर्थात् हमारा रहना वस्तु, अवस्था आदिके आश्रित नहीं है। इसलिये वस्तु, पदार्थ, व्यक्ति आदिके द्वारा हम सुखी होंगे और इनके बिना हम दुखी होंगे—यह बात गलत सिद्ध हो गयी।

जाग्रत्‌में भी अनेक पदार्थोंके बिना हम रहते हैं, पर सुषुप्तिमें तो सम्पूर्ण पदार्थोंके बिना हम रहते हैं और उससे हमें शक्ति मिलती है। अच्छी गहरी नींद आनेपर स्वास्थ्य अच्छा होता है और जगनेपर व्यवहार अच्छा होता है।

नींदके बिना मनुष्यका जीना कठिन है। नींद लिये बिना उसे चैन नहीं पड़ता। इससे सिद्ध हुआ कि सम्पूर्ण वस्तुओंके अभावके बिना हम रह नहीं सकते। वस्तुओंका अभाव बहुत आवश्यक है। अत: अनुभवके आधारपर हमारी यह मान्यता गलत सिद्ध हो गयी कि धन, सम्पत्ति, कुटुम्ब आदिके मिलनेसे ही हम सुखी होंगे और उनके बिना रह नहीं सकेंगे।

सुषुप्तिमें वस्तुओंके बिना भी हम जीते हैं। जीते ही नहीं, सुखी भी होते हैं और शरीर, इन्द्रियों, मन, बुद्धि सबमें ताजगी भी आती है। जाग्रत्‌में जब वस्तुओंसे सम्बन्ध रहता है, तब हमारी शक्ति क्षीण होती है और नींदमें वस्तुओंका सम्बन्ध न रहनेसे शक्ति संचित होती है। वस्तुओंके सम्बन्ध-विच्छेदके बिना और नींदमें क्या होता है? यदि जाग्रत् अवस्थामें ही हम वस्तुओंसे अलग हो जायँ, उनसे अपना सम्बन्ध न मानें, उनका आश्रय न लें, तो जीवन्मुक्त हो जायँ! नींदमें तो बेहोशी (अज्ञान) रहती है, इसलिये उससे जीवन्मुक्त नहीं होते। सम्पूर्ण वस्तुओंसे सम्बन्ध-विच्छेद होना मुक्ति है। मुक्तिमें जो आनन्द है, वह बन्धनमें नहीं है। मुक्तिमें आनन्द होता है—वस्तुओंसे सम्बन्ध छूटनेसे। नींदमें जब वस्तुओंको भूलनेसे भी सुख-शान्ति मिलती है, तब जानकर उनका सम्बन्ध-विच्छेद करनेसे कितनी सुख-शान्ति मिलेगी!

शरीर और संसार एक है। ये एक-दूसरेसे अलग नहीं हो सकते। शरीरको संसारकी और संसारको शरीरकी आवश्यकता है। पर हम स्वयं (आत्मा) शरीरसे अलग हैं और शरीरके बिना भी रहते ही हैं। शरीर उत्पन्न होनेसे पहले भी हम थे और शरीर नष्ट होनेके बाद भी रहेंगे—इस बातका पता न हो तो भी यह तो जानते ही हैं कि गाढ़ निद्रामें जब शरीरकी यादतक नहीं रहती, तब भी हम रहते हैं और सुखी रहते हैं। शरीरसे सम्बन्ध न रहनेसे शरीर स्वस्थ होता है। संसारसे सम्बन्ध-विच्छेद होनेपर आप भी ठीक रहोगे और संसार भी ठीक रहेगा। दोनोंकी आफत मिट जायगी। शरीरादि पदार्थोंकी गरज और गुलामी मनसे मिटा दें तो महान् आनन्द रहेगा। इसीका नाम जीवन्मुक्ति है। शरीर, कुटुम्ब, धन आदिको रखो, पर इनकी गुलामी मत रखो। जड़ वस्तुओंकी गुलामी करनेवाला जड़से भी नीचे हो जाता है, फिर हम तो चेतन हैं। जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति—तीनों अवस्थाओंसे हम अलग हैं। ये अवस्थाएँ बदलती रहती हैं, पर हम नहीं बदलते। हम इन अवस्थाओंको जाननेवाले हैं और अवस्थाएँ जाननेमें आनेवाली हैं। अत: इनसे अलग हैं। जैसे, छप्परको हम जानते हैं कि यह छप्पर है तो हम छप्परसे अलग हैं—यह सिद्ध होता है। अत: हम वस्तु, परिस्थिति, अवस्था आदिसे अलग हैं—इसका अनुभव होना ही मुक्ति है।

# प्रभु श्रीराम और जटायुका प्रथम मिलन

( श्रीजगदीशप्रसादजी गुप्त )

'वत्स रामभद्र! धनुष मत चढ़ाओ। मैं राक्षस नहीं हूँ। तुम्हारा शत्रु भी नहीं हूँ। तुम्हारा हितैषी हूँ मैं।'—पंचवटीके एक महावटके ऊपर बैठे एक पर्वताकार पक्षीने मनुष्यकी कारुणिक वाणीमें पुकारकर कहा, जब उसने प्रभु श्रीरामको उसे कामरूप मायावी राक्षस समझकर धनुष चढ़ाते हुए देखा। उस पक्षीकी स्नेहमयी वाणी सुनकर प्रभु आश्वस्त हुए और उससे पूछने लगे—'तातश्री! आपका परिचय? आप मुझे कैसे जानते हो?'

वह पक्षी कहने लगा—'वत्स रामभद्र! महर्षि कश्यपकी पत्नी विनतासे दो पुत्र अरुण और गरुड़ हुए। अरुण भुवन-भास्करके सारथी हुए। मेरे पिता अरुण और माता श्येनीसे मेरे अग्रज सम्पाति और मुझ जटायुने जन्म लिया।' 'जटायु' नाम सुनकर प्रभु उस पक्षीको आश्चर्यसे देखने लगे—'गृध्रराज जटायु!' तत्काल धनुष भूमिपर रखकर प्रभुने पृथ्वीपर सिर रखकर भाईके साथ प्रणाम किया—'तात! यह दाशरथि राम अनुज लक्ष्मणके साथ आपको प्रणाम करता है।' 'आयुष्मान्!' जटायु धीरेसे वटवृक्षसे नीचे उतर आये—'हम दोनों भाई बाल्यकालमें पिताके दर्शनके उत्साहमें भगवान् भास्करकी ओर उड़े थे। बहुत ऊपर जाकर मैं उनकी किरणोंका तेज सहनेमें असमर्थ हो गया और पृथ्वीपर लौट आया। मेरे अग्रज ऊपर उड़ते गये। फलत: उनके पंख सूर्यके तापसे भस्म हो गये और वे पृथ्वीपर गिर पड़े। पक्षियोंने अग्रजके अभावमें मुझे गृध्रराज बना दिया। वत्स रामभद्र! अब मैं वृद्ध हो गया हूँ। फिर भी मैं तुम्हारा हितैषी हूँ।'

'तातश्री!' प्रभु श्रीरामने श्रद्धापूर्वक मस्तक झुकाया—'बाल्यकालमें पिताश्रीके मुखसे सुना था कि आपने उनकी प्राण-रक्षा की थी। आप उनके सहज सुहृदय हैं, अयोध्यामें आपके कभी दर्शन-लाभ हुए नहीं।'

'वत्स रामभद्र!' गृध्रराज जटायुके नेत्र भर आये—'आपके पिताश्री, सप्तद्वीपाधिपति चक्रवर्ती महाराज दशरथने मुझ नगण्य गृध्रको स्मरण रखा। वे महामानव हैं। वत्स! ऐसा नहीं, मैं अयोध्या गया ही नहीं, मैं वहाँ दो बार गया था। एक बार, जब महाराज शनि-विजय करके अन्तरिक्षसे लौट अयोध्या जा रहे थे, वे मुझे अयोध्या साथमें ले गये। उस समय शनिदेव रोहिणी नक्षत्रके क्षेत्रका भेदनकर शकट-भेद योग बना रहे थे। उस योगमें बारह वर्षोंतक तीनों लोकोंमें भयंकर अकाल पड़ता है। शनिदेवके उस भेदनको रोकनेके लिये, महाराज अपने दिव्यास्त्रोंके साथ रथपर सवार होकर मन्त्रबलसे रथके अश्वोंको उड़ाते हुए सूर्यमार्ग भुवर्लोकसे सवा लक्ष योजन ऊपर रोहिणीपृष्ठपर पहुँचे और उन्होंने शनिदेवसे भयंकर युद्ध किया। शनिके प्रहारसे रथ-सारथीसहित महाराज अन्तरिक्षसे नीचे गिरने लगे। उस समय मैं आकाशमें उड़ रहा था। सहज भावसे मैं उनको पीठपर लेकर काननमें उतर आया। स्वस्थ होकर, महाराज पुन: शनिदेवसे युद्ध करने पहुँचे और अपने धनुषपर तीनों लोकोंको भयभीत करनेवाला संहारास्त्र चढ़ाने लगे। शनिदेव भयभीत हो गये और महाराजको रोहिणी-क्षेत्रका भेदन नहीं करनेका वचन दिया। महाराज अन्तरिक्षसे मेरी ओर पृथ्वीपर आये। उनकी शनि-विजयपर मैं प्रसन्न हुआ। वे मुझपर अति प्रसन्न थे कि

प्राण-रक्षा होनेपर ही वे शनि-विजय प्राप्त कर सके।'

प्रभु श्रीराम पूछने लगे—'तातश्री! आप दूसरी बार अयोध्या कब आये?' गृध्रराज भाव-विभोर हो गये—वत्स रामभद्र! पहली बार अयोध्या आपके जन्मसे पहले ही आया था। महाराजने उस समय मेरा भव्य स्वागत किया था। दो दिन अयोध्यामें रुकनेके बाद, मैंने महाराजसे जानेकी आज्ञा माँगी। उनकी आँखें भर आयीं। उन्होंने मुझे अपने गले लगाया और बोले—मित्र! तुमने मेरे प्राणोंकी रक्षा की है। मुझसे कुछ माँगो। मैंने महाराजसे अनुनय किया—'राजन्! मित्रसे कुछ भी नहीं माँगना चाहिये।' वे कहने लगे—'मित्र! तुम मुझसे कुछ नहीं लोगे तो मुझे बहुत कष्ट होगा, कुछ तो माँगो।' विवशतावश मैंने कहा—'राजन्! मैं पुत्रहीन हूँ, कोई भी सन्तान नहीं है। आप जब पुत्रवान् हों, तब आप अपने प्रथम पुत्रको मुझे दे दें। यही माँगता हूँ।' महाराज प्रसन्न हुए—'हे मित्र! जब भी मैं पुत्रवान् हूँगा, तब प्रथम पुत्रपर तुम्हारा अधिकार होगा। यह मेरा सत्य-संकल्प है।'

गृध्रराज जटायुकी वाणी सुनकर भाई लक्ष्मण और सीता भी चकित हुए। वे ध्यानमग्न होकर सुन रहे थे—'वत्स रामभद्र! आप साक्षात् परब्रह्म हैं। आपका चार रूपमें महाराजके यहाँ प्राकट्य हुआ। महाराजसे वह शुभ समाचार पाकर मैं दूसरी बार अयोध्या पहुँचा। वहाँ मेरा भव्य स्वागत हुआ।'

वत्स रामभद्र! महाराजने तुम्हें मेरी गोदमें देते हुए कहा—'यह प्रथम पुत्र आजसे तुम्हारा है, अपनी अमानत सँभालो।' मैं तुम्हें लाड़-प्यार करने लगा, चूमने-चाटने लगा। उस समय तुम्हारी माताएँ तथा अयोध्यावासी हताश हो रहे थे। मैंने तुम्हें महाराजकी गोदमें दे दिया—'राजन्! यह मेरा पुत्र है, अभी यह बालक है। लालन-पालन कीजिये। जब ये बड़े हो जायँगे, तब मैं इन्हें ले जाऊँगा अथवा ये मेरे पास स्वयं आ जायँगे।'

मैं महाराजसे विदा लेकर चला आया। गृध्रकी छाया अशुभ कही जाती है। मैं फिर अपने मित्रकी अयोध्यानगरी गया नहीं। वत्स रामभद्र! मेरे मित्र सकुशल हैं?'

प्रभु श्रीरामने जटायुके समीप जाकर उनके शरीरपर अपने कर फेरे और भुजा फैलाकर उनसे ऐसे चिपके जैसे पितासे ही मिल रहे हों—'आपके मित्र तो परलोक चले गये। मैं पितृहीन हो गया था। आज आपको पाकर वह अभाव दूर हो गया। मैंने स्वप्नमें भी सोचा नहीं था कि यहाँ वनमें आप-जैसे स्नेहशील पिताकी प्राप्ति होगी!' महाराज दशरथके देहावसानके समाचारसे जटायु विह्वल हो गये, कुछ क्षण मौन रहनेके पश्चात् कहने लगे—'वत्स रामभद्र! गीधको बहुत दूरतक देखनेकी शक्ति प्राप्त है। तुमलोग अयोध्यासे चले, तबसे मेरी दृष्टि तुमपर ही है। तुम भुवनसुन्दरको देखनेके पश्चात् सृष्टिमें और कुछ देखना शेष कहाँ रहता है! मुझे आश्चर्य हुआ था, तुम दोनों भाइयोंका यह तापस वेष देखकर। मुझे महाराजपर भी क्रोध आया था, किंतु वनमें तुम मेरी ओर बढ़ रहे थे, मैं प्रतीक्षा करता रहा। तुम अब मेरे समीप आ गये। तुम स्वयं संसारके मुझ-जैसे अधम प्राणियोंके पास आकर न अपनाओ तो प्राणी अपने पुरुषार्थसे तुमतक कहाँ, कैसे पहुँच सकता है। वत्स रामभद्र! इस महावटके समीप सरितातटपर पंचवटी तुम्हारी पर्णकुटीके उपयुक्त स्थान है। मैं यहाँ वृक्षपर बैठा पुत्री सीताकी देख-रेख करता रहूँगा। इस सघन अरण्यवनमें राक्षस तथा हिंसक जानवर भरे हुए हैं। यहाँ बहुत सावधान रहना आवश्यक है।'

जटायुका यह दैनिक नियम बन गया कि वे प्रातः प्रभुके नित्य दर्शन करते और प्रभु राम तथा लक्ष्मणकी अनुपस्थितिमें सीताजीकी चौकसी करते।

पूज्यपाद गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने अपने श्रीरामचरितमानस (अरण्यकाण्ड)-में जटायु-मिलनका संकेत किया है—

**गीधराज सैं भेंट भइ बहु बिधि प्रीति बढ़ाइ।**
**गोदावरी निकट प्रभु रहे परन गृह छाइ॥**

# भक्तिकी शिखर-साधना

( श्रीसुरेशजी शर्मा )

शास्त्रोंमें मनुष्य-शरीरको पाँच कोशोंमें विभाजित किया गया है—१-अन्नमय कोश और २-प्राणमय कोश, ३-मनोमय कोश, ४-विज्ञानमय कोश और ५-आनन्दमय कोश। भक्तिका इन कोशोंसे गहरा सम्बन्ध है। ज्यों-ज्यों भक्त एक कोशसे दूसरे कोशमें जाग्रत् होता जाता है, उसकी भक्तिमें गहराई एवं उन्नति होती जाती है। इस लेखमें इन कोशोंपर चिन्तन करेंगे—

**१-अन्नमय कोश—**अन्नमयकोशमें भक्त केवल शरीरके धरातलपर रहता है। इसमें भक्त कर्मकाण्डतक एवं अहंकारमें जीता है। इसमें अधिकांश भक्तोंके शरीरमें वासनाकी लहरें हिलोरें मार रही होती हैं। इन्हें राधाकृष्ण-सम्बन्ध, रास, गोपियोंका संग, आठ पटरानियाँ, सोलह हजार रानियाँ, उनके पुत्र—इन सबमें वासना-ही-वासना नजर आती है। अधिकांश भक्त, साधु, संन्यासी, बुद्धिजीवी, प्रोफेसर इत्यादि भी अन्नमय कोशसे ऊपर न उठ पानेके कारण वासनाके धरातलसे ऊपर उठ नहीं पाते। इसने ही सारे संसारको भ्रमित कर रखा है।

**२-प्राणमय कोश—**इनमेंसे कुछ भक्त संयमित आहार-विहार, सद्विचार एवं सत्संगद्वारा अन्नमय कोशसे ऊपर उठ जाते हैं और प्राणमय कोशमें प्रवेश कर जाते हैं। श्वास-प्रश्वासमें नाम-जप, मन्त्रजप करने लगते हैं। जपके कारण इनमें बुद्धि एवं तर्कका स्थान श्रद्धा एवं भक्ति लेने लगती है तथा ये भक्तिके प्राणमय कोशमें जीने लगते हैं।

**३-मनोमय कोश—**प्राणमय कोशसे भक्त मनोमय कोशमें प्रवेश कर जाता है और जपके साथ वह ध्यानमें उतरता जाता है। मन्त्रजपके साथ-साथ राधाकृष्णका चिन्तन-ध्यान होने लगता है। कभी-कभी तो वह ध्यानमें राधाकृष्ण-रास, यमुना, वृन्दावन इत्यादिमें विचरण करने लगता है और मन, आत्मासे बोल फूट पड़ते हैं—

*'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।'* या फिर

*'आली! मोहे लागे वृन्दावन नीको,'*
*'घर-घर तुलसी ठाकुर पूजा भोजन दूध-दही को॥'*

इत्यादि-इत्यादि।

**४-विज्ञानमय कोश—**मनोमय कोशसे ऊपरकी अवस्था विज्ञानमय कोश है। भगवद्गीताके अध्याय सातके श्लोक १६में भगवान् कहते हैं—भक्त चार प्रकारके होते हैं, पहला धन-वैभवके लिये जप-तप करनेवाला अर्थार्थी, संकट-निवारणके लिये जपनेवाला आर्त, जाननेकी इच्छावाला जिज्ञासु और चौथा ज्ञानी। भगवान् कहते हैं, 'ज्ञानी तो मेरा स्वरूप ही है।' ज्ञानीको अद्वैत मार्गमें भगवान्का दर्जा दिया गया है।

**५-आनन्दमय कोश—**सन् १९६८-६९ की बात रही होगी। मुंबईमें एक गृहस्थ गुजराती सन्त परमपूज्य श्रीपरमानन्दस्वरूप चम्पक भाई रहते थे। आप नारायण स्वामीके शिष्य थे एवं गुरुके आदेशानुसार मुंबईको ही अपना कार्यक्षेत्र बना लिया था। आप नित्य सायंकाल अपने शिष्योंके घरपर गीताका प्रवचन करते थे, जो इनके शिष्य लिखते जाते थे। इस प्रकार इनके गीतापर कई भाष्य गुजरातीमें प्रकाशित हुए एवं रात्रिमें नित्य प्रति दो-तीन घण्टे संकीर्तन होता था। हॉलमें अँधेरा रहता था, बस, एक घीका दीपक जलता रहता था; कीर्तन अनवरत बिना अन्तरालके चलता रहता था, मैं इसका साक्षी हूँ।

पर रविवारको प्रवचन नहीं होता था, वरन् सायंसे रात्रि दस बजेतक अनवरत संकीर्तन होता था। इस बीच सन्त-गुरु चैतन्य महाप्रभुकी तरह करताल बजाते हुए गोल-गोल नाचने लगते थे और शिष्य लोग हाथका घेरा चारों ओर बना लेते थे और फिर थोड़ी देर बाद धम्मसे गिर जाते थे। उनके शिष्य उन्हें सीधा लिटा देते थे और एक पतला सफेद कपड़ा ओढ़ा देते थे। लगभग घण्टे-आधे घण्टे बाद वे उठ बैठते थे, तो भाव-जगत्में ही पद-रचना करने लगते थे, जो उनके शिष्य नोट करते जाते थे। उनके तीस पद मेरे पास भी संकलित हैं। एक-दो बानगी स्वरूप प्रस्तुत हैं—

**तड़पत टपकत निशि दिन नैना""तड़पत०**
**बरसा में ज्यों बरसे बदरवा**
**हरि बिन ऐसे बरसत नैना""तड़पत०**

दुखियारी प्रभु जन्म-जन्म की
तुम बिन कैसे कटे दिन रैना''''तड़पत०
परमानन्द प्रभु कबहूँ मिलोगे
राम दरस बिन झूरत नैना''''तड़पत०
× × ×
सखी री अजहू श्याम न आये।
गरज गरज कर बरखा बरसे,
चमक चमक बिजलियाँ चमके
श्याम श्याम वह अखियाँ तरसे
कौन उसे समझाये। सखी री''''०
श्याम श्याम रटूँ दिन सखी री
रो रो कर मैं रैन गुजारूँ
परमानन्द बिरहिन कब पाऊँ
राम श्याम तरसाये। सखी री''''०

आनन्दमय कोशका पूर्ण वर्णन सम्भव नहीं रहा, अनुभवकी बात है।

*बोध-कथा—*

## अन्नदोष

एक महात्मा राजगुरु थे। वे प्रायः राजमहलमें राजाको उपदेश करने जाया करते। एक दिन वे राजमहलमें गये। वहीं भोजन किया। दोपहरके समय अकेले लेटे हुए थे। पास ही राजाका एक मूल्यवान् मोतियोंका हार खूँटीपर टँगा था। हारकी तरफ महात्माकी नजर गयी और मनमें लोभ आ गया। महात्माजीने हार उतारकर झोलीमें डाल लिया। वे समयपर अपनी कुटियापर लौट आये। इधर हार न मिलनेपर खोज शुरू हुई। नौकरोंसे पूछ-ताछ होने लगी। महात्माजीपर तो सन्देहका कोई कारण ही नहीं था। पर नौकरोंसे हारका पता भी कैसे लगता! वे बेचारे तो बिल्कुल अनजान थे। पूरे चौबीस घंटे बीत गये। तब महात्माजीका मनोविकार दूर हुआ। उन्हें अपने कृत्यपर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। वे तुरन्त राजदरबारमें पहुँचे और राजाके सामने हार रखकर बोले—'कल इस हारको मैं चुराकर ले गया था मेरी बुद्धि मारी गयी, मनमें लोभ आ गया। आज जब अपनी भूल मालूम हुई तो दौड़ा आया हूँ। मुझे सबसे अधिक दुःख इस बातका है कि चोर तो मैं था और यहाँ बेचारे निर्दोष नौकरोंपर बुरी तरह बीती होगी।'

राजाने हँसकर कहा—'महाराजजी! आप हार ले जायँ यह तो असम्भव बात है। मालूम होता है जिसने हार लिया, वह आपके पास पहुँचा होगा और आप सहज ही दयालु हैं, अतः उसे बचानेके लिये आप इस अपराधको अपने ऊपर ले रहे हैं।'

महात्माजीने बहुत समझाकर कहा—'राजन्! मैं झूठ नहीं बोलता। सचमुच हार मैं ही ले गया था। पर मेरी निःस्पृह—निर्लोभ वृत्तिमें यह पाप कैसे आया, मैं कुछ निर्णय नहीं कर सका। आज सबेरेसे मुझे दस्त हो रहे हैं। अभी पाँचवीं बार होकर आया हूँ। मेरा ऐसा अनुमान है कि कल मैंने तुम्हारे यहाँ भोजन किया था, उससे मेरे निर्मल मनपर बुरा असर पड़ा है। आज जब दस्त होनेसे उस अन्नका अधिकांश भाग मेरे अन्दरसे निकल गया है, तब मेरा मनोविकार मिटा है। तुम पता लगाकर बताओ—वह अन्न कैसा था और कहाँसे आया था?'

राजाने पता लगाया। भण्डारीने बतलाया कि 'एक चोरने बढ़िया चावलोंकी चोरी की थी। चोरको अदालतसे सजा हो गयी, परंतु फरियादी अपना माल लेनेके लिये हाजिर नहीं हुआ। इसलिये वह माल राजमें जप्त हो गया और वहाँसे राजमहलमें लाया गया। चावल बहुत ही बढ़िया थे। अतएव महात्माजीके लिये कल उन्हीं चावलोंकी खीर बनायी गयी थी।'

महात्माजीने कहा—'इसीलिये शास्त्रने राज्यान्नका निषेध किया है। जैसे शारीरिक रोगोंके सूक्ष्म परमाणु फैलकर रोगका विस्तार करते हैं, इसी प्रकार सूक्ष्म मानसिक परमाणु भी अपना प्रभाव फैलाते हैं। चोरीके परमाणु चावलोंमें थे। उसीसे मेरा मन चंचल हुआ और भगवान्‌की कृपासे अतिसार हो जानेके कारण आज जब उनका अधिकांश भाग मलद्वारसे निकल गया, तब मेरी बुद्धि शुद्ध हुई। आहारशुद्धिकी इसीलिये आवश्यकता है!'

तीर्थ-दर्शन—

# उज्जैनका महाकाल-ज्योतिर्लिंग

( पं० श्रीआनन्दशंकरजी व्यास )

भारतके इतिहासमें उज्जयिनीका बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। रामायण, महाभारत, विविध पुराणों तथा काव्य-ग्रन्थोंमें इसका आदरपूर्वक उल्लेख हुआ है। धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टिसे इसका अद्वितीय स्थान है। इसी पावन नगरीके दक्षिण-पश्चिम भू-भागमें पुण्य-सलिला क्षिप्राके पूर्वी तटसे कुछ ही अन्तरपर भगवान् महाकालेश्वरका विशाल मन्दिर स्थित है। महाकालकी गणना द्वादश ज्योतिर्लिंगोंमें की गयी है, जो शिव-पुराणमें दिये गये द्वादश ज्योतिर्लिंग-माहात्म्यसे स्पष्ट है—

**सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम्।**
**उज्जयिन्यां महाकालमोंकारं परमेश्वरम्॥**
**केदारं हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशंकरम्।**
**वाराणस्यां च विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे॥**
**वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं दारुकावने।**
**सेतुबन्धे च रामेशं घुश्मेशं च शिवालये॥**
**द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्।**
**सप्तजन्मकृतं पापं स्मरणेन विनश्यति॥**

उक्त द्वादश ज्योतिर्लिंगोंमें महाकालेश्वरका प्रमुख स्थान है। पुराणोंके अनुसार महाकालको ज्योतिर्लिंगके साथ-साथ समस्त मृत्युलोकके स्वामीके रूपमें भी स्वीकार किया गया है—

**आकाशे तारकं लिंगं पाताले हाटकेश्वरम्।**
**मृत्युलोके महाकालं लिंगत्रय नमोऽस्तु ते॥**

इस प्रकार तीनों लोकों (आकाश, पाताल एवं मृत्युलोक))-के अलग-अलग अधिपतियोंमें समस्त मृत्युलोकके अधिपतिके रूपमें महाकालको नमन किया गया है। महाकाल शब्दसे ही काल (समय)-का संकेत मिलता है।

**'कालचक्रप्रवर्तको महाकालः प्रतापनः'** कहकर कालगणनाके प्रवर्तकके रूपमें महाकालको स्वीकार किया गया है। महाकालको ही कालगणनाका केन्द्रबिन्दु माननेके अन्य कारण भी हैं। अवन्तिकाको भारतका मध्यस्थान (नाभिक्षेत्र) माना गया है और उसमें भी महाकालकी स्थिति मणिपूरचक्र (नाभि)-पर मानी गयी है।

**आज्ञाचक्रं स्मृता काशी या बाला श्रुतिमूर्धनि।**
**स्वाधिष्ठानं स्मृता कांची मणिपूरमवंतिका॥**
**नाभिदेशे महाकालस्तन्नाम्ना तत्र वै हरः।**

(वराहपुराण)

'मणिपूर चक्र' योगियोंके लिये कुण्डलिनी है, कुण्डलिनी जाग्रत् करनेकी क्रिया योगके क्षेत्रमें महत्त्वपूर्ण मानी जाती है, अतः मणिपूरचक्रपर स्थित भगवान् महाकाल योगियोंके लिये भी सिद्ध स्थल हैं।

इसी प्रकार भूमध्यरेखा भौगोलिक कर्करेखाको उज्जयिनीमें ही काटती है, इसलिये भी समय-गणनाकी सुगमता इस स्थानको प्राप्त है। कर्करेखा तो स्पष्ट है ही, भूमध्य रेखाके लिये भी ज्योतिषके विभिन्न सिद्धान्त-ग्रन्थोंमें प्रमाण उपलब्ध हैं—

**राक्षसालयदेवौकः शैलयोर्मध्यसूत्रगा।**
**रोहीतकमवन्तीं च यथा सन्निहितं सरः॥**

(सूर्यसिद्धान्त)

भास्कराचार्य पृथ्वीकी मध्यरेखाका वर्णन इस प्रकार करते हैं:—

**यल्लंकोज्जयिनीपुरोपरि कुरुक्षेत्रादिदेशान् स्पृशन्।**
**सूत्रं मेरुगतं बुधैर्निगदिता सा मध्यरेखा भुवः॥**

जो रेखा लंका और उज्जयिनीसे होकर कुरुक्षेत्र आदि देशोंको स्पर्श करती हुई मेरुमें जाकर मिलती है, उसे भूमिकी मध्यरेखा कहते हैं। इस प्रकार भूमध्यरेखा लंकासे सुमेरुके मध्य उज्जयिनीसहित अन्यान्य नगरोंको स्पर्श करती जाती है, किंतु वह कर्करेखाको एक ही स्थान उज्जयिनीमें, मध्यस्थल एवं नाभि (मणिपूरचक्र)-स्थानपर काटती है, जहाँ स्वयंभू महाकाल विराजमान हैं। इसीलिये ज्योतिर्विज्ञानके सिद्धान्तकार भारतके किसी भी क्षेत्रमें जन्मे हों, अथवा उनका कार्य या रचना-क्षेत्र कहीं भी रहा हो, सभीने एकमतसे कालचक्रप्रवर्तक महाकालकी नगरी उज्जयिनीको ही कालगणनाका केन्द्र स्वीकार किया था। आज भी भारतीय पंचांगकर्ता उज्जयिनी मध्यमोदय लेकर ही पंचागकी गणना करते हैं। इस प्रकार दृश्यरूपसे काल-गणनाके प्रवर्तक तथा प्रेरक महाकाल हैं।

दृश्यरूपमें श्वास-निःश्वाससे लेकर दिन, मास, ऋतु, अयन एवं वर्षकी गणनाका सम्बन्ध सूर्यसे है। एक सूर्योदयसे दूसरे सूर्योदयतक एक दिन (दिनके सूक्ष्म विभाग घटी, पल, विपल आदि) और दिनोंसे मास, ऋतु, वर्ष, युग, महायुग और कल्प आदिकी गणना चलती रहती है। ऐसे अनेक कल्पोंके संयोग (जो वाचनिक संख्याओंसे परे हों)-को ही महाकाल कहते हैं। सूर्य प्रतिदिन (२४ घण्टेमें) एक उदयसे दूसरे उदयपर्यन्त ३६० अंश या २१६०० कलाएँ चलता है, यही स्वस्थ मनुष्यकी २४ घण्टेमें श्वासोंकी संख्या भी है। अर्थात् सूर्यकी प्रत्येक कलाके साथ मनुष्यके श्वास-निःश्वासकी क्रिया जुड़ी हुई है और सभीमें आत्मरूपसे वह विद्यमान है। कहनेका तात्पर्य यह कि कालगणनामें दृष्ट (सूर्य) अदृष्ट (महाकाल)-में सामंजस्य है। महाकाल ज्योतिर्लिंग है और ज्योतिर्लिंगकी दिव्य ज्योतिके दर्शन चर्मचक्षुसे नहीं होते, तपसे प्राप्त दिव्य चक्षुसे ही हो सकते हैं। सूर्य स्वतः अग्नितत्त्व, ज्योतिका पुंज, तेज और प्रकाशका कारण है। अतः महाकाल ज्योतिर्लिंग है और सूर्य स्वतः ज्योतिके पुंज हैं, महाकाल ही सूर्य हैं और सूर्य ही महाकाल हैं।

महाकालेश्वरके मंदिरमें उदयादित्यके नागबन्धस्थ शिलालेखमें महाकालका जो ध्यान दिया है, उसमें महाकालको प्रणव (ओम्)-स्वरूप माना है। वह पद्य इस प्रकार है—

**क्रीडाकुण्डलितोरगेश्वरतनूकाराधिरूढाम्बरा-**
**नुस्वारं कलयन्नकाररुचिराकारः कृपार्द्रः प्रभुः।**
**विष्णोर्विश्वतनोरवन्तिनगरीहृत्पुण्डरीके वसन्**
**ओंकाराक्षरमूर्तिरस्यतु महाकालोऽन्तकालं सताम्॥**

अर्थात् जिनका रुचिर आकार ही 'अकार' है। क्रीड़ासे कुण्डलित शेषनागके शरीरको जिन्होंने 'उकार' का रूप देकर आकाशको अनुस्वारके रूपमें धारण किया है तथा विश्वरूप विष्णुके अवन्तिनगरीरूपी हृदयकमलमें जो निवास करते हैं, ऐसे अक्षर (कभी नष्ट न होनेवाली) मूर्ति, ओंकारके रूपमें विराजमान, अपनी कृपासे द्रवित हृदयवाले प्रभु महाकाल सज्जनोंके अन्तकालको दूर भगावें।

इस प्रकार समस्त भूलोकके स्वामी, कालगणनाके केन्द्रबिन्दु, योगियोंकी कुण्डलिनी नाभिपर स्थित और स्वतः प्रणवस्वरूप होनेसे ही श्रीमहाकाल प्रमुख ज्योतिर्लिंग हैं।

**स्रष्टारोऽपि प्रजानां प्रबलभवभयाद् यं नमस्यन्ति देवाः**
**यो ह्यव्यक्ते प्रविष्टः प्रवहितमनसां ध्यानयुक्तात्मनां च।**

**बिभ्राणः सोमलेखामहिवलययुतं व्यक्तिलिंगं कपालम्**
**लोकानामादिदेवः स जयतु भगवान् श्रीमहाकालनामा॥**

प्रजा एवं सृष्टिके कारणरूप, भयविनाशक, देवाराधित, ध्यानस्थ महात्माओंके अव्यक्त हृदयमें एकाग्ररूपसे विराजित सोमलेखा, कपाल एवं अहिवलयसे मण्डित आदिदेव ज्योतिर्लिंग भगवान् महाकालका यशोगान करना और उसके प्रति भक्तिभावसे नमन करना भला कौन नहीं चाहेगा।

ज्योतिर्लिंग महाकालेश्वर स्वयंभू माने गये हैं। दक्षिणामूर्ति होनेसे तन्त्रकी दृष्टिसे उनका विशिष्ट महत्त्व है। प्रतिवर्ष लाखों तीर्थयात्री उनके दर्शनकर स्वयंको कृतकृत्य मानते हैं। कुम्भके पावन पर्वपर पवित्र क्षिप्रामें स्नान करना और भगवान् महाकालके दर्शन करना कौन नहीं चाहेगा?

भूतभावन भगवान् महाकालेश्वरकी गणना भारतके सुप्रसिद्ध द्वादश ज्योतिर्लिंगोंमें की गयी है। पुराणोंके अनुसार भगवान् महाकालेश्वर अवन्ती क्षेत्र एवं महाकाल वनके शैव क्षेत्रके क्षेत्राधिपति माने गये हैं।

अनेक काव्य-ग्रन्थों एवं अभिलेखोंमें भगवान् महाकालकी स्तुति गायी गयी है।

**षष्टिकोटिसहस्राणि षष्टिकोटिशतानि च।**
**महाकालवने व्यास लिंगसंख्या न विद्यते॥**

(स्कन्दपुराण, अवन्ति-खण्ड ५। ३९। ३

**अवन्ती नाम नगरी मालवे भुवि विश्रुता।**
**तत्रास्ते भगवान् देवस्त्रिपुरारिस्त्रिलोचनः॥**
**महाकालेति विख्यातः सर्वकामप्रदः शिवः।**

(ब्रह्मपुराण ४३। २४, ६५-६६)

**अवन्त्यान्तु महाकालम्।**

(शिवपुराण)

**नाभिदेशं महाकालस्तन्नाम्ना तत्र वै हरः॥**

(वराहपुराण अ० ३)

**यद्राजधान्युज्जयिनी महापुरी सदा।**
**महाकालमहेशयोगिनी**

(ज्योतिर्विदाभरण, अ० १०, १६)

**असौ महाकालनिकेतनस्य वसन्नदूरे किल चन्द्रमौलेः।**

(रघुवंश, सर्ग ६। ३४)

पुराणोंके अनुसार अवन्तिकाके इस प्रमुख देवताका विस्तार तीनों लोकोंमें है। आकाशमें यह तारक-लिंग, पातालमें हाटकेश्वर तथा मृत्युलोकमें महाकालेश्वरके रूपमें वन्दनीय है। संभवतः इसी कारण महाकाल मन्दिर तीन खण्डोंमें विभक्त है। सबसे ऊपरके खण्डमें नागचन्द्रेश्वर, मध्यके खण्डमें ओंकारेश्वर तथा नीचेके खण्डमें महाकालेश्वरके शिवलिंग पूजित होते हैं। नागचन्द्रेश्वरकी पूजा-अर्चनाके लिये नागपंचमीका ही विशिष्ट विधान है।

भगवान् महाकाल अनन्त कालसे उज्जैनमें विराजमान हैं। प्राचीन आहत सिक्कोंपर वे अंकित हुए हैं।

ई०पू० छठीं सदीमें उनका एक विशाल मन्दिर अवन्तिकामें होनेके ऐतिहासिक साक्ष्य हैं। परमार-कालमें इस मन्दिरका निर्माण करवाया गया था। एक अत्यन्त ही मनोहारी परमारकालीन स्तुतिसे यह तथ्य ज्ञात होता है, किंतु दुर्भाग्यवश सन् १२३५ ई० में दिल्लीके गुलामवंशके सुल्तान शमशुद्दीन इल्तुतमिशने अपने उज्जैन आक्रमणके समय उसे तुड़वा दिया। महाकाल मन्दिर परिसरमें आज भी उस मन्दिरसे सम्बन्धित प्रस्तर-अवशेष, प्रतिमाएँ एवं अभिलेख देखे जा सकते हैं।

महाकवि कालिदासके पूर्वमेघमें की गयी महाकालकी स्तुति तो विलक्षण है—

**अप्यन्यस्मिन् जलधर महाकालमासाद्य काले**
**स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदत्येति भानुः।**
**कुर्वन् सन्ध्याबलिपटहतां शूलिनः श्लाघनीया-**
**मामन्द्राणां फलमविकलं लप्स्यसे गर्जितानाम्॥**

(पूर्वमेघ, ३८)

महाकालेश्वरका वर्तमान मन्दिर उज्जैनके प्रथम मराठा शासक राणोजी शिंदेके धर्मप्राण दीवान रामचन्द्र बाबा शेणवीद्वारा मन्दिरके प्राचीन स्थलपर ही अठारहवीं सदीके चतुर्थ दशकमें निर्मित करवाया गया था। इसी समय तत्कालीन अन्य मराठा श्रीमंतों एवं सामन्तोंने मन्दिर-परिसरमें अनादि-कल्पेश्वर, बृहद् महाकालेश्वर आदि मन्दिरों और बरामदोंनुमा धर्मशालाका निर्माण भी

करवाया था। उज्जैनपर जिस समयसे शिंदे वंशका अधिकार हुआ है, तबसे महाकालेश्वर मन्दिरकी प्रतिष्ठा और आदर-भावनामें वृद्धि ही हुई है। ग्वालियर राज्य, होल्कर राज्य और भारतीभूषण भोजके राजवंशियोंकी ओरसे महाकालेश्वरके पूजनादिके लिये सहायता प्राप्त होती रही।

महाकालेश्वरके इस महान् स्थानकी दिनमें त्रिकाल पूजा होती है। प्रात:काल सूर्योदयसे पूर्व एक पूजन होता है, जिसमें भूतभावन भगवान् शिवजीपर चिताभस्मका लेपन किया जाता है, जिसकी अनादिकालसे किसी विशिष्ट चिताभस्मकी निरंतर प्रज्वलित रहनेवाली वह्निसे योजना की जाती है। इस पूजनका अधिकार स्थानीय महन्तको है, जिनकी परम्परा महिम्नस्तोत्र के '**चिताभस्मालेपः**' श्लोककी सार्थकता करती आयी है। उक्त महन्तोंकी गुरुपरम्पराकी समाधियाँ इसी मन्दिरके निकट महन्तोंके पुरातन अस्तित्व और मन्दिरसे सम्बन्धको सूचित करती हैं।

महाकालेश्वरकी सरकारी प्रथम पूजा प्रात: ८ बजे, द्वितीय मध्याह्नमें और तृतीय सायंकालके समय होती है। इन पूजनोंका नैवेद्य स्थानीय महन्तके अधिकारकी वस्तु है। महाकालेश्वरके मन्दिरमें श्रावणमासमें प्रतिदिन सैकड़ों-हजारों यात्रियोंका मेला प्रात:से सायं लगा रहता है। अमांत (श्रावण) मासके सभी सोमवारोंके दिन नगरमें महाकालेश्वरजीकी एक भव्य रजत-प्रतिमाकी बहुत शानदार सवारी निकलती है। इन सवारियोंको देखनेके लिये नगरके ही नहीं, बाहरसे भी हजारों यात्री एकत्रित होते हैं और भक्ति-भावांजलि अर्पित करते हैं। इन सवारियोंमें नगरके समस्त राज्याधिकारी भगवान् महाकालके सम्मानमें पैदल ही चलते हैं। इसी प्रकार हरिहर-मिलाप और दशहरेके पूजनका दृश्य भी आकर्षक रहता है। शिवरात्रिके समय नवरात्रिका उत्सव होता है। प्रतिदिन महाकालेश्वरजीके विविध श्रृंगार किये जाते हैं। हरिकीर्तन भी विशाल प्रांगणमें किया जाता है। धार्मिक नर-नारियोंकी यात्रा होती रहती है और शिवरात्रिको जो पूजा होती है, वह तो बहुत ही भव्य होती है, कैलासका पवित्र वातावरण उपस्थित कर देती है। मन्दिरका पृष्ठभाग भी बहुत विशाल है। सहस्रों व्यक्तियोंका सहज समावेश हो जाता है। इसी प्रकार मन्दिरके प्रवेशद्वारके प्रांगणमें कोटितीर्थका विशाल भाग चारों दिशाओंसे मुक्त और विस्तृत है। क्रमशः भक्तजन इसमें स्नानकर शिवजीको जल अर्पण करते हैं। इसी प्रकार कार्तिक और वैशाख मासमें भी हजारों भावुकोंकी भीड़ दर्शनार्थ आती है।

महाकालेश्वरजीकी मूर्ति स्वयंभू और विशाल है। गुहागृह-द्वारसे मन्दिरके अन्दर प्रवेश किया जाता है। मूर्तिकी विस्तीर्ण जलाधारी रजतकी, सुन्दर, कलामय, नागवेष्टित निर्मित हुई है। मन्दिरमें शिवजीके सम्मुख विशाल नन्दिकेश्वरकी पाषाणप्रतिमा धातुपत्रवेष्टित है। भगवान् शिव दक्षिण-मूर्ति हैं। तान्त्रिकोंने जिस शिवकी दक्षिण-मूर्तिकी आराधनाका महत्त्व प्रतिपादित किया है, द्वादशज्योतिर्लिंगोंमें यह महत्त्व केवल यहीं प्राप्त हो सकता है। पश्चिमकी ओर गणेशजी, उत्तरकी ओर भगवती पार्वती और पूर्वमें कार्तिकेयकी प्रतिमा स्थापित है। मन्दिरमें निरन्तर दो नन्दादीप (तेल और घृतके) प्रज्वलित रहते हैं। मन्दिरमें धवल पाषाण जड़ा हुआ है। आरम्भमें प्रवेशका एक ही द्वार था, किंतु कुछ समय पूर्व द्वितीय द्वार बन गया है। मन्दिरकी भव्यता दर्शनीय है। अत्युच्च शिखरपर विद्युद्दीपकी योजना की गयी है, जो प्रकाशित होनेपर समस्त मन्दिरको अपनी धवल-ज्योत्स्नाके आवरणसे ढँककर एक सुषमा फैला देती है। मन्दिरके प्रांगणके प्रवेश-द्वारपर नक्कारखाना है, जहाँ दिन-रात चौघड़ियेकी ध्वनि विस्तीर्ण होती रहती है।

महाकालेश्वरके ठीक ऊपरी भागपर ओंकारेश्वर शिवजीकी प्रतिमा स्थापित है (जैसा कि ओंकारेश्वरके नर्मदास्थित मन्दिरके ऊपर महाकाल मूर्ति स्थापित है)। कुण्डके तटवर्ती गर्भागारमें ब्राह्मणोंकी बैठक है, जहाँ कुछ ब्राह्मण पूजार्चन-व्यवस्थाके लिये निरन्तर बैठे रहते हैं। महाकालेश्वरकी पूजन-व्यवस्था और दक्षिणा सोलह पुजारियोंके अधिकारकी वस्तु है। मन्दिरके दक्षिण

विभागमें ऊपर वृद्धकालेश्वर, अनादि कालेश्वर और शिवमन्दिर हैं। पूर्वमें पुरातत्त्वविभागका छोटा-सा म्यूजियम भी है।

महाकालेश्वरके निकटवर्ती भू-भागको 'महाकाल वन' कहनेकी पौराणिक ख्याति और चतुर्दिक् परकोटा बने रहनेके कारण इस विभागको कोटमुहल्ला भी कहा जाता है। आज यह परकोटा (सीमादर्शक कोट) नहीं है, पर कोटकी ख्याति यथावत् है। मध्ययुगमें इस विभागमें राजप्रसाद, भव्य भवन, उपवन आदि रहे हैं। भू-गर्भमेंसे अनेक ध्वंसावशेष झाँककर अपनी पूर्वसत्ताका स्मरण करा देते हैं। सिक्के और शिलाखण्डों, मन्दिरावशेषोंकी झाँकी भी प्रायः इस ओर थोड़ी-सी खुदाईके बाद हो ही जाती है। दीर्घकालसे ब्राह्मणोंके संकल्पोंमें '**महाकालवने हरसिद्धिपीठे बौद्धावतारे**' की उक्तिमें अवश्य ही रहस्य निहित है। महाकालेश्वरका महामन्दिर, कुण्ड और उसके चारों ओरकी शिव-मन्दिरियाँ शुक्ल पक्षकी रजत-रजनीमें इतने सुन्दर, आकर्षक बन जाते हैं कि कालीदासके काव्यवैभवकी सहसा स्मृति सजग हो जाती है। महाकालेश्वरके सभामण्डपमें ही एक ओर राम-मन्दिरके पृष्ठभागमें अवन्तिकादेवीकी मूर्ति है, जो इस पुरातन भव्य नगरीकी अधिष्ठात्री हैं।

महाप्रलयसे आबद्ध वसुंधरातटपर भारत-हृदय उज्जयिनी प्रदेश ही सर्वप्रथम मानव-सृजनसे समृद्ध हुआ था।

उज्जयिनीमें महाकालेश्वर मन्दिरके सामने एक कलहनाशन नामका कुण्ड है, जिसमें स्नान करनेसे मानव सभी द्वन्द्वोंसे मुक्ति पा लेता है। इस तीर्थके दक्षिणमें प्रस्थमातृका मन्दिर है। इसीके समक्ष श्रेष्ठ शंकर तीर्थोंमें एक मणिकर्णिका-कुण्ड है। महाकालवनका एक अन्य नाम अप्सरातीर्थ भी माना जाता है, क्योंकि इसी भू-भागमें उर्वशी अप्सराने राजा पुरुरवाको मोहितकर अपना पति बना लिया था। यहाँ दो शिवलिंग हैं। प्रस्थमातृका मन्दिरके दक्षिणमें महाकालतीर्थके रूपमें जाना जानेवाला महिषकुण्ड नामक पवित्र जलकुण्ड है। इस कुण्डको रुद्रसरोवर भी कहते हैं। गांगती नामकी एक गुफा भी तीर्थोंके तीर्थ उज्जयिनीका एक अन्य तीर्थ है। इस गुफाके उत्तरमें विद्याधरतीर्थ है। यहीं शीतलामाताकी अर्चनाके लिये मर्कटेश्वरतीर्थ भी विद्यमान है।

यहाँके स्वर्गतीर्थमें भैरव और भवानीकी एक साथ पूजा करनेका विधान है। उज्जयिनीके राजस्थलमें शिवमूर्ति है, जहाँपर चार समुद्रोंके अवशेष मिलनेकी सम्भावना व्यक्त की गयी है।

एक मान्यता है कि दस्युसे महर्षि बने महर्षि वाल्मीकिने इस अवन्तिक्षेत्रमें वाल्मीकेश्वरकी तपस्या कर काव्यसिद्धि प्राप्त की थी। इस सिद्धिके बूतेपर ही वे वाल्मीकि रामायणकी रचना कर सके थे। उज्जयिनीमें ही सफेद फूलोंसे पूजे जानेवाले शुक्रेश्वर, दर्शनमात्रसे पुण्यप्रदायक भौमेश्वर और मीठे तेल तथा बिल्वपत्रसे पूजित लंकेश्वरका वास है। यहाँके चूड़ामणिलिंगकी अर्चना कार्तिकमासमें सीतानवमीव्रतसे और चण्डीश्वरकी पूजा कृष्णपक्षकी अष्टमीका व्रत रखकर की जाती है।

कहा जाता है कि इस तीर्थनगरीमें पूर्व दिशामें पिंगलेश्वर, पश्चिममें विश्वेश, उत्तरमें उत्तरेश्वर और दक्षिण दिशामें कायावरोहणतीर्थ एवं मन्दिर थे। यहाँकी कुशस्थलीकी एक परिक्रमा विश्वभ्रमणके बराबर मानी जाती है।

देवीपूजामें भी उज्जयिनी पीछे नहीं है। हरसिद्धि देवीके अलावा पद्मावती, स्वर्णश्रृंगातिकादेवी, अमरावतीदेवी, उज्जयिनीदेवी, विशालादेवी आदि देवियाँ भी यहाँ पूजी जाती हैं।

प्राचीन आख्यानोंमें यहाँ उज्जयिनी नामक एक कुण्डका भी उल्लेख मिलता है, जिसके समीप मन्दाकिनी बहती है। महाकाल वनमें शिवलिंगोंकी संख्या ६६ करोड़ बतायी जाती है। क्षाता और क्षिप्राका संगम उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना प्रयागका।

सिंहस्थ महापर्वके अवसरपर उज्जयिनीका धार्मिक-सांस्कृतिक महत्त्व स्वयमेव कई गुना बढ़ जाता है। साधु-संतोंका जमाव, सर्वत्र पावन स्वरोंका गुंजन, शब्द एवं स्वरशक्तिका आत्मिक प्रभाव यहाँ प्राणीमात्रको अलौकिक शान्ति देता है।

# रामसखा वानरराज सुग्रीवका शौर्य

( डॉ० श्रीअजित कुमार सिंहजी, एम०ए०, पी-एच०डी० )

आदिकवि वाल्मीकिरचित 'रामायण' श्रीरामचरितपर आधारित विश्वका प्रथम महाकाव्य है। त्रैलोक्यपीड़क रावणके संरक्षणमें पल्लवित-फलित राक्षसी वृत्तियोंका समूल नाशकर मानवीय मूल्योंकी स्थापना लोकरंजक श्रीरामका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उल्लेखनीय कार्य रहा है। परंतु राक्षसीवृत्तिके उन्मूलनका व्रत धारण कर चुके राघवेन्द्रके लिये यह कार्य बिना वानरराज सुग्रीवकी सहायताके सम्भव नहीं था। सीता-अन्वेषण, सेतु-बन्धन, वानर-सेनाका एकत्रीकरण तथा राक्षसोंसे युद्ध आदि प्रभुके सभी कार्योंमें उन्होंने मित्रभावसे पूर्ण सहयोग किया।

विशुद्ध ऐतिहासिक दृष्टिसे विचार करनेपर यह भलीभाँति विदित होता है कि उस समय भारतीय प्रायद्वीपमें तीन राजशक्तियाँ विशेषरूपसे महत्त्वपूर्ण थीं—उत्तरवर्ती भूभागमें इक्ष्वाकुवंशीय आर्यशक्ति जहाँ अयोध्याका राजवंश था, सुदूर दक्षिणमें समुद्रमें स्थित लंकाको केन्द्र बनाकर रावणके संरक्षण और नेतृत्वमें राक्षसीशक्ति और दोनोंके मध्यवर्ती घोर वनाच्छादित भू-भागमें गीध, नाग एवं वानरसंज्ञक मानव-समूहोंका शासन था, जिनमें बालिके नेतृत्वमें रावणका मान-मर्दनकर वानरी-शक्ति अपनी श्रेष्ठता और सैन्यशक्तिका प्रमाण दे चुकी थी। यद्यपि यह वानरशक्ति वनप्रान्त एवं पर्वत-श्रेणियोंके मध्य आवासित थी, फिर भी अयोध्या-जैसी भव्य पुरीके यशस्वी राजकुमार लक्ष्मणतक उनकी प्रमुख राजधानी किष्किन्धापुरीकी वास्तुकला और वैभवको देखकर आश्चर्यचकित रह गये थे। इतना ही नहीं, वे महारानी ताराकी विलक्षण तार्किक प्रतिभा और राजनैतिक दूरदर्शितासे अभिभूत हो गये थे। वे सुग्रीवके सच्चे पश्चात्तापपूर्ण मनोभावोंसे पूर्णतया शान्तचित्त आश्वस्त और सन्तुष्ट हो अपने आदरणीय अग्रज श्रीरामके पास लौटे थे।

देवी सीताके अन्वेषणके निमित्त वानर-प्रमुखोंको चतुर्दिक् भेजते समय कपिराज सुग्रीवने भूममण्डलके प्रमुख स्थानोंका जो सजीव और यथार्थ विवरण प्रस्तुत किया था, उससे तो स्वयं श्रीरामप्रभु भी विस्मयसे भर उठे थे। श्रीराघवद्वारा पूछे जानेपर वानरराज सुग्रीवने स्पष्ट किया था कि अपने अग्रज बालिद्वारा देशसे निष्कासित होनेके पश्चात् इन स्थानोंका उन्होंने स्वयं भ्रमण किया था।

सीताजीके सफल अन्वेषणके पश्चात् हनुमान्‌जीने देवी जानकीको आश्वासन देते हुए बताया था कि करोड़ों वानरोंके परमप्रतापी राजा सुग्रीव, जिनका मैं सचिव हूँ, के बलपर श्रीराम रावणका वधकर आपका उद्धार करेंगे। लंकाके महासमरके प्रारम्भसे पूर्व आयोजित सचिवोंकी सभामें लंकादहनके समय पवनपुत्रके शौर्यसे परिचित हो चुकी राजसभाको सम्बोधित करते हुए लंकेशके सचिव वज्रदंष्ट्रने सुग्रीवके बलकी प्रशंसा करते हुए, शौर्य और पराक्रमकी दृष्टिसे श्रीराम तथा श्रीलक्ष्मणके बाद वानरीश्वर सुग्रीवका ही नामोल्लेख किया था। आक्रमणकारी सुविशाल वानरसेनाके लिये समुद्रतटपर सरलतापूर्वक खाद्य-सामग्री एवं पानीकी उपलब्धताके आधारपर स्थानका चयनकर वानरेन्द्र सुग्रीवने अपने सैन्य-कौशल एवं दूरदर्शिताका परिचय दिया था।

देवी सीताके अन्वेषणार्थ वानरोंको भेजनेसे लेकर, लंकापति रावणके विरुद्ध युद्ध तथा अपने जीवनके अन्ततक इस वानरपुंगवने मित्रताके जिस उच्चादर्शका प्रस्तुतीकरण किया, उसकी तुलना विश्व-इतिहासमें अन्यत्र दुर्लभ है। अपने सच्चे मित्रके हितसाधनके निमित्त इस वनवासी वानराधीश्वरने अपना सर्वस्व दाँवपर लगा दिया था और अपने परमसखाके स्वर्गारोहणके समय उनके साथ ही जलसमाधि ले सबको अभिभूत कर दिया था। वे सूर्यपुत्र थे, उन्होंने सूर्यमण्डलमें प्रवेश किया।

तीनों लोकोंके लिये आतंक बन चुके लंकाधिप रावणके प्रलोभनपूर्ण प्रस्तावको ठुकराते हुए रामके प्रति अटूट मैत्रीके प्रतिमान परमवीरने प्रत्युत्तरमें रावणको सचेत करते हुए उसके दूत शुकके माध्यमसे कहलवाया

था—'हे रावण! न तो तुम मेरे मित्र हो, न ही मेरे प्रति मैत्री या कृपाके भाव रखनेवाले ही हो। मेरे मित्र श्रीरामके प्रति घोर शत्रुताके कारण बालीकी भाँति तुम भी वध करनेयोग्य हो। देवताओंके लिये भी दुर्जय श्रीराम लंकापुरीको भस्मसात् करके ही वापस लौटेंगे।'

लंकायुद्धसे पहले विभीषण सुबेलपर्वतके शिखरसे श्रीराम, लक्ष्मण, ऋक्षराज जाम्बवान् और वानरराज सुग्रीवको स्वर्णनिर्मित लंकापुरी, रावणका राजमहल और उसकी छतपर बैठे रावणको दिखा रहे थे। रावणको देखते ही सुग्रीव क्रोधसे उद्विग्न हो गये और सुबेलके शिखरसे छलाँग लगाकर रावणके पास जा पहुँचे तथा अकस्मात् उछलकर रावणके ऊपर जा कूदे और उसके विचित्र मुकुटोंको खींचकर उसे भी गिरा दिया, फिर उसकी अनेक प्रकारसे दुर्दशाकर पुनः सुबेलपर्वतपर श्रीरामके पास लौट आये। श्रीरामने उनके शरीरमें युद्धके चिह्न देखकर उन्हें गलेसे लगा लिया और पुनः ऐसा साहस करनेसे मना कर दिया।

वानरराज सुग्रीवद्वारा कुम्भकर्णके पराक्रमी पुत्र कुम्भका वध लंकाके महासमरकी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटनाओंमें-से एक है। काले मेघके समान वर्णवाले महाकाय और श्रेष्ठ धनुर्धर कुम्भके रथका ध्वज वासुकि नागके चिह्नसे अंकित था। अपने महापराक्रमी पिताके वधसे अत्यन्त कुपित इस रणदुर्दम राक्षस सेनानीने अपने अचूक लक्ष्यवेधके बलपर वानर युवराज अंगदसहित मैन्द एवं द्विविद नामक दुर्धर्ष वानर सेनापतियोंको आहत कर दिया था। अपनी ओर ससैन्य अग्रसर जाम्बवान्को भी उसने रोक देनेमें सफलता प्राप्त की थी। इन्द्रजीत मेघनादके समान श्रेष्ठ धनुर्धर तथा राक्षसेन्द्र रावणतुल्य प्रतापी वह अपने पराक्रमपुंज पिताके नाक, कान और पसलियोंको क्षत-विक्षत करनेवाले वानरराज सुग्रीवको अपने प्रतिशोधका ग्रास बनाना चाहता था। वानर सैनिकोंका वध करते हुए वह वानरेन्द्रसे जा टकराया था। भयंकर द्वन्द्वयुद्धके उपरान्त वानराधिराज सुग्रीव उसके महाविनाशक धनुषको तोड़कर दूर समुद्रमें फेंक देनेमें सफल हुए। धनुषभंगके कारण हतमनोबल कुम्भ शीघ्र ही वानरसर्वेश्वर सुग्रीवके हाथों अपना प्राणान्त करा बैठा था।

युवराज इन्द्रजितके वधके उपरान्त शोक-सन्तप्त रावणके परिजनों एवं प्रमुख सेनापतियोंमें विरूपाक्ष, महापार्श्व तथा महोदर-जैसे कुछ प्रमुख योद्धा ही शेष रह गये थे। इन्हींको साथ लेकर लंकेशने स्वयं वानरसेनाके सर्वनाशका दृढ़ निश्चय किया। उसके प्रतिशोधकी भावनासे विनष्ट हो रही पलायमान वानरसेनाको स्थिर करनेका दायित्व अपने वीरवर श्वशुर और कुशल वैद्यराज सुषेणको सौंप सुग्रीवने स्वयं ही रावणसे जूझनेका निर्णय लिया। अनेक वानरयूथपोंके साथ रावणकी ओर अग्रसर वानरराजसे रावण सेनानी विरूपाक्ष बीचमें ही आ टकराया। वानरोंके भीषण प्रत्याक्रमणसे आर्तनाद करती राक्षससेनाके मनोबलको बढ़ानेके उद्देश्यसे वह रथसे उतरकर एक मत्त गजराजपर आरूढ़ हो गया। वानरराजपर गजारूढ़ विरूपाक्षद्वारा बाणवर्षा करते देख राक्षससेनाका आर्तनाद रुक-सा गया। उसके बाणप्रहारने पहलेसे ही कुपित हो रावणकी ओर बढ़ते हरीश्वरका क्रोध और अधिक बढ़ा दिया। युद्धनिपुण सुग्रीवके भीषण प्रहारसे चिग्घाड़ता हुआ गजराज समरभूमिमें धराशायी होनेको हुआ कि विरूपाक्ष उसपरसे कूदकर सुग्रीवपर चढ़ दौड़ा। उसके भीषण असि-प्रहारसे राजा सुग्रीवका कवच विदीर्ण हो गया और राक्षस सेनानीकी

तलवार उसमें फँसकर रह गयी। उस तलवारको अपने हाथोंसे खींचनेके लोभमें राक्षस-सेनापति भयंकर आत्मघाती भूल कर बैठा। दोनों हाथोंसे अपनी तलवार खींच रहे विरूपाक्षपर वानरराजने ऐसा भीषण पाद-प्रहार किया कि आक्रमणकारी धरतीपर जा गिरा। बस, फिर क्या था? शक्तिशाली कपिराज कूदकर उसकी छातीपर जा बैठे और उसके वक्ष:स्थल और शिरोभागपर तबतक भीषण मुष्टिप्रहार करते रहे, जबतक कि उसका शिरोभाग चूर-चूर नहीं हो गया। अविरल बहती रक्तधारसे पार्श्वभूमिको लाल करता विरूपाक्ष यमसदन पहुँच गया। समरभूमि एक साथ हुए राक्षसोंके आर्तनाद एवं वानरोंके हर्षनादसे निनादित हो उठी।

भग्न-मनोबल राक्षसी सेनाओंके मध्य एकमात्र आशाका आधार घोषित करते हुए रावणने अपने सौतेले-मौसेरे भाई महोदरको श्रीराम, लक्ष्मणजी एवं वानरराजके वधका आदेश दिया।

वानरसेनाको विनष्टकर आगे बढ़ते महोदरको महाशूर सुग्रीवका सामना करना पड़ा। दोनोंके मध्य चले भयंकर तुमुल संग्राममें वानरराजने समरभूमिमें पड़े एक परिघको उठा उसके प्रहारसे महोदरके रथके अश्वोंका वध कर डाला। तदुपरान्त वानरराजने उसी परिघसे महोदरपर प्रहार किया, किंतु राक्षस सेनानीने अपनी गदासे उस भीषण प्रहारको रोक लिया। परिणामस्वरूप गदा और परिघ दोनों खण्डित हो गये। इसके पश्चात् मूसलधारी वानरराज तथा नयी गदा धारण करनेवाले रावणसेनानीमें पुनः द्वन्द्व प्रारम्भ हो गया। परिणामस्वरूप गदा और मूसल दोनों खण्डित हो गये। युद्धकुशल महाराज सुग्रीवको पीछे हटते न देख कोपाकुल महोदर असि धारणकर उनपर झपटा। उसको असि धारण करते देख सूर्यपुत्र सुग्रीवने भी अपने हाथोंमें खड्ग ले लिया। दोनोंके घात-प्रतिघातमें महोदर वानराधीश्वरपर भीषण असि प्रहारकर उनके कवचको विदीर्ण करनेमें सफल हुआ। यह तो वानरराजकी चपलता-सी थी कि उन्होंने विद्युत्-गतिसे पीछे हट अपने वक्ष:स्थलको विदीर्ण होनेसे बचा लिया था। किंतु महोदरकी तलवार कपिराजके कवचमें फँसकर रह गयी थी। अपनी तलवारको दोनों हाथोंसे कवचसे बाहर खींच पुनः प्रहारके उद्देश्यसे महोदर भयंकर आत्मघाती भूल कर बैठा। अवसरका लाभ उठा वानर महावीरने अपने एक ही खड्ग-प्रहारसे महोदरके शिरस्त्राण और रत्नजटित कुण्डलधारी शिरको भूलुण्ठित कर दिया। कपीन्द्रके इस दुस्साहसिक सुकृत्यने देवताओं, यक्षों, गन्धर्वों तथा किन्नरोंको हर्षित कर दिया। महोदरके मरते ही राक्षसी सेना लंकाकी ओर भाग चली।

इस प्रकार वानरराज सुग्रीवके शौर्य और पराक्रमने मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके ***'निसिचर हीन करउँ महि'*** के संकल्पमें अपना महान् योगदान दिया।

## प्राचीनताको अक्षुण्ण रखना आवश्यक

**स्व० अलैक्सेई बारान्निकोव सोवियत-संघके पहले हिन्दी-प्रचारक तथा गोस्वामी तुलसीदासजीकी रामचरितमानसका रूसी भाषामें 'रामचरितमानस—रामके शौर्यमय कार्योंका सागर' नामसे अनुवाद करनेवाले प्रथम मनीषी थे। उनके पुत्र डॉ० प्योत्रा बारान्निकोव भी हिन्दी एवं भारतीय संस्कृतिके अनन्य प्रेमी हैं तथा रामचरितमानसके भक्त हैं। अपनी भारतयात्रामें वे चित्रकूट, अयोध्या, प्रयाग, लखनऊ आदि उन स्थानोंपर भी गये, जिनका श्रीरामसे सम्बन्ध रहा है। उन्होंने बताया 'प्रयागमें पावन संगममें स्नानकर मैंने भारी मानसिक शान्ति प्राप्त की, किंतु उस समय मुझे बहुत कष्ट हुआ, जब पता चला कि प्राचीन 'प्रयाग' नगरीका नाम 'इलाहाबाद' तथा लक्ष्मणजीके नामपर बसी 'लक्ष्मणपुरी' नगरीका नाम 'लखनऊ' कर दिया गया है।' उन्होंने कहा कि 'यदि मैं भारतका नागरिक होता तो इलाहाबादका नाम पुनः 'प्रयाग' तथा लखनऊका 'लक्ष्मणपुरी' करनेके लिये प्रस्ताव लाता। उन्होंने बताया कि सोवियत-संघमें प्राचीन नगरोंके नामोंको पुनः प्रतिष्ठापित किया गया है। सोवियत-संघ भले ही आधुनिकताका हामी है, किंतु प्राचीनताको अक्षुण्ण रखा जाना आवश्यक समझता है। इसी प्रकार भारतको भी अपने प्राचीन ऐतिहासिक नगरोंके नामोंका प्रचलन करनेमें गर्व अनुभव करना चाहिये।** [ श्रीशिवकुमारजी गोयल ]

# जम्बूद्वीप ( एशिया )-की पौराणिक पर्वतीय संरचना

( प्रो० श्रीअभिराजराजेन्द्रजी मिश्र )

प्रत्येक पुराणका एक प्रमुख व्याख्येय विषय है—भुवनसंक्षेप, जिसका अर्थ है—सृष्टिरचना (Theory of Creation)। यह विषय प्रायः सर्ग अथवा प्रतिसर्ग (महाप्रलयके अनन्तर होनेवाली दूसरी सृष्टि)-के अन्तर्गत आता है। इसमें बताया गया है कि निष्कल परमेश्वरने सकल अथवा सगुण बननेपर सृष्टि कैसे की? यह पृथ्वी, यह आकाश, ये दिग्दिगन्त, लोक-लोकान्तर, पर्वत, नदी, महासागर, भयावह कानन तथा समूचा स्थावर-जंगम संसार कैसे अस्तित्वमें आया? सूर्य-चन्द्रादि विविध ग्रहोंका अपने ग्रहपथपर संचरण, यह रात-दिन, ये षड् ऋतुएँ, महाप्लावन, झंझावात तथा भूकम्प—कैसे और क्यों सम्भव होते हैं?

यद्यपि विषयकी गूढ़ता तथा रहस्यमयताके कारण तथा उससे भी अधिक मनुष्यकी अनेकविध 'अपात्रता' के कारण पुराणोंमें व्याख्यात 'भुवनसंक्षेप' अन्ततक समझमें नहीं आता। बस, उसका पर्यवसान विस्मयों तथा आश्चर्योंमें होता रहता है। वस्तुतः इसे समझनेके लिये **अतीन्द्रिय ज्ञान** (Transcendental knowledge) अथवा **योगज प्रत्यक्ष**-की आवश्यकता होती है, जो मात्र तपस्साध्य है। बिना तपश्शक्तिके ज्ञानकी वह शक्ति मनुष्यमें भला कहाँसे आयेगी?

फिर भी, जैसे चतुर यान्त्रिकके मानचित्रको देख बननेवाले भवनका स्वरूप, थोड़ा-बहुत समझमें आ जाता है, उसी प्रकार पुराणोंका भुवनसंक्षेप पढ़कर विश्वसृष्टिका स्थूलरूप समझमें आ ही जाता है। प्रायः विश्वकी समस्त भारतमूलक संस्कृतियों (सुमेर, बेबीलोन, असुर, हित्ती, मितानी, मिस्रकी फराह संस्कृतियों)-ने महाप्रलय तथा सृष्टिकी अवधारणा भारतसे ही प्राप्त की है तथा थोड़े-बहुत परिवर्तनोंके साथ उसे व्याख्यात किया है—परिवर्तित देश एवं कालमें।

श्रीमद्भागवत-महापुराणके पाँचवें स्कन्धके अन्तर्गत पन्द्रहवें अध्यायमें भगवान् कृष्णद्वैपायन व्यासने विश्वसृष्टिका प्रसंग उठाया है। ब्रह्माजीके पुत्र थे—स्वायम्भुव मनु, मनुस्मृतिके रचनाकार। उनके दो पुत्र हुए—उत्तानपाद तथा प्रियव्रत। उत्तानपादके ही पुत्र थे महान् विष्णुभक्त कुमार ध्रुव, जिन्हें पाँच वर्षकी अल्पायुमें ही नारायणका दर्शन मिला। ध्रुवके ही वंशमें 'पृथु' का जन्म हुआ, जिन्हें भारतीय परम्परामें 'आदिराज' कहा जाता है। पृथुने ही अपने धनुषकी नोकसे पर्वतोंको फोड़कर पृथ्वीको समतल बनाया। उन्हींके नामपर इस धरित्रीको 'पृथ्वी' अथवा 'पृथिवी' कहा गया (**पृथोरियं पृथ्वी**)।

गोरूपधारिणी पृथ्वीके दोहनकी चर्चा कालिदासने भी की है। पृथुके कहनेपर ही हिमालयको बछड़ा बनाकर मेरुरूपी गोपने गोरूपा पृथ्वीको दुहा था—

**यं सर्वशैलाः परिकल्प्य वत्सं**
**मेरौ स्थिते दोग्धरि दोहदक्षे।**
**भास्वन्ति रत्नानि महौषधीश्च**
**पृथूपदिष्टां दुदुहुर्धरित्रीम्॥**

(कुमारसम्भव १।२)

परंतु भागवतकारने पृथुद्वारा स्वयमेव पृथ्वीको दुहे जानेकी बात कही है। पृथ्वीको उर्वर तथा निरापद बनानेके लिये पर्वतोंको भी स्थिर करना अनिवार्य था, अन्यथा उनके नित्य स्थान-परिवर्तनसे पृथ्वी भूकम्पभयसे आकम्पित रहती थी—

**अस्मै नृपालाः किल तत्र तत्र**
**बलिं हरिष्यन्ति सलोकपालाः।**
**मंस्यन्त एषां स्त्रिय आदिराजं**
**चक्रायुधं तद्यश उद्धरन्त्यः॥**
**अयं महीं गां दुदुहेऽधिराजः**
**प्रजापतिर्वृत्तिकरः प्रजानाम्।**
**यो लीलयाद्रीन् स्वशरासकोट्या**
**भिन्दन् समां गामकरोद्यथेन्द्रः॥**

(श्रीमद्भा० ४।१६।२१-२२)

भागवतकार स्पष्टतः कहते हैं कि पृथुने पृथ्वीको समतल (कृषिकर्म-योग्य) बनाया, जैसा कि पूर्वमें कभी देवसेनानायक इन्द्रने किया था। वस्तुतः वैदिक इन्द्र भी पर्वतोंके पक्षच्छेद तथा उनकी अचलताका कारक माना जाता है। पंख कटनेसे ही **भूकम्पक** पर्वत महीधर (महीध्र, भूधर, धरणीधर, कुधर, पृथ्वीधर) बन गये।

एक वेदमन्त्रसे यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है—

**यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद्**
**यः पर्वतान् प्रकुपिताँ अरम्णात्।**
**यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो**
**यो द्यामस्तभ्नात्स जनास इन्द्रः॥**

(ऋग्वेद २। १२। २)

महाराज प्रियव्रतको ही श्रेय जाता है सप्तद्वीपों तथा सप्त सागरोंके निर्माणका। भागवतकारने विलक्षण प्रशंसा की है—

**प्रियव्रतकृतं कर्म को नु कुर्याद् विनेश्वरम्।**
**यो नेमिनिम्नैरकरोच्छायां घ्नन् सप्त वारिधीन्॥**
**भूसंस्थानं कृतं येन सरिद्गिरिवनादिभिः।**
**सीमा च भूतनिर्वृत्यै द्वीपे द्वीपे विभागशः॥**
**भौमं दिव्यं मानुषं च महित्वं कर्मयोगजम्।**
**यश्चक्रे निरयौपम्यं पुरुषानुजनप्रियः॥**

(श्रीमद्भा० ५। १। ३९—४१)

प्रियव्रतकी दो पत्नियाँ थीं। एक पत्नीसे तीन पुत्र थे—उत्तम, तामस तथा रैवत। ये तीनों मन्वन्तरोंके स्वामी हुए। विश्वकर्माकी पुत्री बर्हिष्मती सम्राट्की दूसरी पत्नी थी, जिसके गर्भसे दस पुत्र एवं कन्या 'ऊर्जस्वती' पैदा हुई। प्रियव्रतके दस पुत्रोंमेंसे तीन—महावीर, सवन तथा कवि विरक्त बनकर परमहंस बन गये। शेष सातों पुत्रोंके नाम अग्न्यर्थक ही थे—

आग्नीध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, हिरण्यरेता, घृतपृष्ठ, मेधातिथि और वीतिहोत्र। सम्राट् प्रियव्रतने इन्हीं सातों पुत्रोंको सप्तद्वीपा पृथ्वीका अधिपति बनाया।

यह सप्तद्वीपा पृथ्वी क्या थी? इसके सात द्वीप क्यों और कैसे बने? इस विषयमें भागवतकारने अद्भुत रहस्योद्घाटन किया है। सुमेरुपर्वतकी परिक्रमा करते सूर्य पृथ्वीके आधे भागको ही आलोकित कर पाते थे। आधी पृथ्वी अँधेरेमें ही डूबी रहती थी, यह देख पृथ्वीपति प्रियव्रतने रथस्थ होकर सूर्यकी ही भाँति सात परिक्रमाएँ करनी प्रारम्भ कर दीं। द्वितीय सूर्यके समान प्रियव्रतकी इस परिक्रमासे समूची पृथ्वीमें आलोक रहने लगा। परंतु इन नित्यप्रतिकी सात परिक्रमाओंसे, प्रियव्रतके रथकी पहियोंसे पृथ्वीमें सात परिखाएँ (खाइयाँ) बन गयीं तथा उनमें पानी भर गया। इस प्रकार ठोस पृथ्वीपर सात सागरोंकी सृष्टि हो गयी तथा सागरोंसे विभक्त पृथ्वीपर सात द्वीप बन गये।

श्रीमद्भागवतपुराणमें यद्यपि सातों द्वीपोंका क्रम बता दिया गया है—जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक तथा पुष्कर। भारतवर्ष चूँकि जम्बूद्वीपके ही नौ खण्डोंमें-से एक है, अतः यह भी विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि आजका एशिया महाद्वीप ही पुराणवर्णित जम्बूद्वीप है। जैन तथा बौद्ध-वाङ्मयमें भी ऐसे ही साधक प्रमाण मिल जाते हैं, परंतु प्लक्षादि द्वीपोंकी पहचान कर पाना कठिन है, प्लक्षादिको पूर्ववर्तीसे उत्तरोत्तर दूना बड़ा बताया गया है। इसलिये जम्बूद्वीपकी पहचानमात्रसे परितोष करना पड़ता है।

सम्राट् प्रियव्रतने जम्बूद्वीपका अधिपति बड़े पुत्र आग्नीध्रको बनाया। इसी प्रकार इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, हिरण्यरेता, घृतपृष्ठ, मेधातिथि तथा वीतिहोत्रको क्रमशः प्लक्ष, शाल्मली, कुश, क्रौंच, शाक तथा पुष्कर द्वीपका अधिपति बनाया। जम्बूद्वीपके चारों ओर क्षारोद अथवा नमकीन पानीका समुद्र है, परंतु अन्य द्वीपोंके सागरोंका जल इक्षुरस, सुरा, घृत, क्षीर (दूध), दधि तथा मण्ड (माँड)-सरीखा है। यह वर्णन निश्चय ही आलंकारिक अथवा प्रतीकात्मक है, क्योंकि सागरजल तो सर्वत्र खारा ही है। हाँ, उसका स्वरूप (रूप-रंग) अवश्य ही द्वीप-द्वीपमें भिन्न है।

ये सातों ही द्वीप खण्डोंमें विभक्त हैं। खण्ड-विभाजनकी आवश्यकता यद्यपि तात्कालिक थी, तथापि वह रूढ़ बन गयी। आग्नीध्रने विप्रचित्ति अप्सरासे विवाहकर नौ पुत्र पैदा किये तथा जम्बूद्वीपको नौ खण्डोंमें विभक्तकर सभी पुत्रोंको एक-एक खण्डका स्वामी बना दिया।

द्वीपोंका खण्डोंमें विभाजन **मर्यादा-पर्वतों**की सहायतासे किया गया। इसका तात्पर्य यह था कि एक पर्वतसे दूसरे पर्वतके बीचका भूखण्ड एक देश मान लिया गया। जम्बूद्वीपका आकार कमलपत्रके समान है। यह उत्तरसे दक्षिणमें लम्बा है तथा पूर्व-पश्चिममें चौड़ा है। इसके केन्द्रका वर्ष **इलावृत** कहा गया, जिसमें ठीक
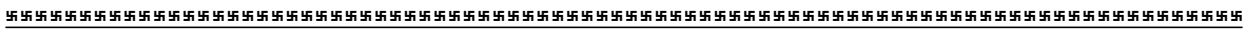
केन्द्रमें विद्यमान है सुवर्णगिरि सुमेरु। इस सुमेरु-पर्वतको, चारों दिशाओंसे चार प्रत्यन्त पर्वत सहारा (उपष्टम्भ) दिये हुए हैं। इनके नाम हैं—मन्दर, मेरुमन्दर, सुपार्श्व तथा कुमुद। इन चारों उपष्टम्भ पर्वतोंपर क्रमशः आम्र, जम्बू, कदम्ब तथा न्यग्रोध (वट)-के विशाल वृक्ष हैं, जिनके फलोंका रस उनकी नदियोंमें बहता रहता है। जम्बूरसको प्रवाहित करनेवाली जम्बू नदीमें ही 'जाम्बूनद' नामक सुवर्ण मिलता है। यह सुवर्ण जामुनके रस, वायु तथा सूर्यकिरणोंकी रासायनिक प्रक्रियासे बनता है।

इसका तात्पर्य यह हुआ कि आजका कैलास ही पौराणिक सुमेरु है। सुमेरुका ही एक शिखर है कैलास। देवाधिदेव शिवकी निवास-भूमि।

अब आप केन्द्रीय भूखण्ड इलावृतसे उत्तर दिशामें बढ़ें। सुमेरुसे मर्यादापर्वत **नील**-तकका भूखण्ड है—**इलावृत।** नीलसे मर्यादापर्वत **श्वेत**-तकका भूखण्ड है—**रम्यक।** श्वेतसे मर्यादापर्वत **शृंगवान्**-तकका भूखण्ड है—**हिरण्मय**। शृंगोत्तर क्षेत्र है **कुरु**।

इलावृतसे दक्षिण आयें। सुमेरुसे मर्यादापर्वत **निषध**-तक है—इलावृत। निषधसे मर्यादापर्वत **हेमकूट**-तक है—हरिवर्ष तथा हेमकूटसे **हिमालय**-तक है किम्पुरुष और मर्यादापर्वत हिमालयसे आगेका (दक्षिणवर्ती) क्षेत्र है—भारतवर्ष! भारतको परिभाषित किया गया है—

**उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।**
**वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः॥**

इलावृतखण्डके पश्चिममें है मर्यादापर्वत माल्यवान्। माल्यवान्से पश्चिमका भूखण्ड है—केतुमाल। इसी प्रकार इलावृतके पूर्वमें है—गन्धमादन। गन्धमादनसे पूर्वका भूखण्ड भद्राश्व कहा जाता है। माल्यवान् तथा गन्धमादन उत्तर तथा दक्षिणके पर्वतों—नील तथा निषधतक व्याप्त है **( आनीलनिषधायतौ )**।

इस प्रकार स्पष्ट है कि द्वीपके विभाजनमें पर्वत अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुए हैं। इसीलिये इन्हें **मर्यादागिरयः** कहा गया। इन मर्यादापर्वतोंके अतिरिक्त जो पर्वत देशके भीतर होते हैं, उन्हें **वर्षपर्वत** (Territorial Mountains) कहा जाता है। भारतवर्षमें यद्यपि इन वर्षपर्वतोंकी संख्या प्रभूत है। तथापि अपनी विशालताके कारण जिन्हें **कुलपर्वत** कहा गया, वे सात हैं। विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३।१६१।१)-में कहा गया है—

**महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षवानपि।**
**विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः॥**

वस्तुतः कुलपर्वतका आशय है—विशाल पर्वतमाला। ऐसा पर्वत जो एकस्थ या सीमित न हो, जो विस्तीर्ण हो तथा अनेक प्रत्यन्त पर्वतों तथा शिखरोंको जन्म देनेवाला हो। महेन्द्र तमिलनाडुमें है तो मलय भी आन्ध्र तथा तमिलनाडुमें व्याप्त है। सह्य केरलमें है, जिसे हम पश्चिमीघाट कहते हैं। इसी पर्वतके शिखर ब्रह्मगिरिसे प्रख्यात दाक्षिणात्य नदी 'कावेरी' जन्म लेती है। कावेरीके स्तोत्रोंमें उसे **सह्यजा** कहा गया है। कर्नाटकमें तो यह नदी कुल्या (नहर)-जैसी ही है, परंतु श्रीरंगम्-तिरुचिरापल्लीतक आते-आते कावेरी महासागर बन जाती है। प्रायः २५० कि०मी०के प्रवाहान्तर कावेरी पूर्वसमुद्रमें समा जाती है।

विन्ध्यपर्वतकी भी महिमा अनन्त है। यह पर्वत समस्त राष्ट्रको दो भागोंमें विभक्त करता है—विन्ध्योत्तर तथा विन्ध्यदक्षिण।

अमरकोष (द्वितीयकाण्ड, शैलवर्ग)-में महीध्र, शिखरी, क्ष्माभृत, अहार्य, धर, पर्वत, अद्रि, गोत्र, गिरि, ग्रावा, अचल, शैल तथा शिलोच्चयको पर्वत-पर्यायके रूपमें स्मरण किया गया है। सप्तद्वीपा पृथ्वीके परकोटे (प्राकार)-के रूपमें **लोकालोक** तथा **चक्रवाल**को उद्धृत किया गया है। अमरकोषकार जम्बूद्वीपके प्रमुख पर्वतोंको गिनाते हैं—

**हिमवान्निषधो विन्ध्यो माल्यवान् पारियात्रकः।**
**गन्धमादनमन्ये च हेमकूटादयो नगाः॥**

पर्वत एवं सागरकी सुख-सुविधा वही जानते हैं, जो उनके पार्श्वस्थ या प्रतिवेशी होते हैं। ऋग्वेदका **अरण्यानी-सूक्त** इसका एक उदात्त रूप प्रस्तुत करता है। आटविकों, वनवासियोंका तो सारा जीवन ही वन एवं पर्वतपर आश्रित होता है। पर्वतोंकी ही बदौलत आज राष्ट्रमें लाखों ऐतिहासिक भवन, देवालय, दुर्ग एवं महिमामय प्रतीक खड़े हैं। इतिहासके रक्षक हजारों शिलालेख इन्हीं पर्वतोंकी देन हैं। अजन्ता, एलोरा, देवगढ़, खण्डगिरि, उदयगिरि, कन्हेरी तथा जोगीमाराकी गुफाएँ, उन गुफाओंमें सुरक्षित शैलचित्र तथा स्थापत्य

इन पर्वतोंकी ही देन हैं।

भारत तो निसर्गतः पर्वतों एवं नदियोंका देश है। कश्मीरसे अरुणाचलतक व्याप्त विशाल देवतात्मा हिमालय भारतका प्रहरी है। इसके अनेक महिमामय शिखर भारतके मानवर्धक हैं। कंचनजंघा, गौरीशंकर (एवरेस्ट), नन्दादेवी, पंचचूली, धौलाधार, चूडधार, किन्नर, कैलास-सरीखे शैलशिखर आवर्ष हिमाच्छादित ही रहते हैं। भारतके मैदानी इलाकोंमें भी छोटे-बड़े पर्वतोंकी भरमार है। हिमाचलके प्रवेशद्वारपर ही मिलती है शिवालिक पर्वतमाला। राजस्थानमें अरावली पर्वतमाला है तो गुजरातमें अर्बुदाचल (माउण्टआबू) तथा रैवतक (गिरनार), महाराष्ट्रमें ब्रह्मगिरि, देवगिरि, शिवनेरी हैं तो आन्ध्र में तिरुमलै देवसंस्थान, श्रीपर्वत एवं कर्णाटकमें शृंगगिरि (शृंगेरी) है। पौराणिक ऋष्यमूक, सह्य, महेन्द्र, प्रवर्षण आदि तो हैं ही। मध्य भारतमें आम्रकूट (अमरकण्टक) उत्कलमें नीलाचल, असममें कामाख्यापर्वत तथा उ०प्र० में चित्रकूटका माहात्म्य अद्भुत एवं अप्रतिम है। रामकथाके नायक रामने वनवासके बारह वर्ष चित्रकूटके पावन अंचलमें ही व्यतीत किये थे। अपना वनवास-काल पाण्डव बन्धुओंने भी माता कुन्ती एवं भार्या पांचालीके साथ इन्हीं वनों-पर्वतोंमें गुजारा। इटारसीके पास **भीमवेटका** गुहाएँ, पंचमढ़ी, हरियाणाका पिंजौर (पंचपुर) तथा हाटकेश्वरी धाम (रोहड़ू, शिमला)-का पाण्डवपहाड़ हमें पाण्डवोंके वनवासकी यात्राओंका स्मरण कराता है।

पर्वत कभी गोवर्धन-रूपमें हमारे रक्षक भी रहे हैं। वे हमारे जन्मजात संरक्षक हैं। उनके फल-फूल, कन्द-मूल, औषधियाँ, इन्धन, मधु, जीव-जन्तु, प्रस्तर-शिलाएँ, स्तम्भ तथा खनिज गुणोंसे युक्त शीतल जलस्रोत तथा स्वयंनिर्मित गुहाएँ—सब कुछ समाजके लिये है।

---

*बोध-कथा—*

## अपनी कमाईका पकवान ताजा!

**एक वृद्ध महाशय अपने बचपनके साथी श्यामजीके पुत्र रामजीके यहाँ आये। उन्होंने कहा—'बच्चे रामजी! दुःख है कि श्यामजीको गुजरे साल बीत गया, पर मैं तुम्हारी खोज-खबर लेने नहीं आया। बेटा! अब तुम्हारे सिरपर कोई नहीं, समझ-बूझकर अच्छे चाल-चलनसे रहना। क्यों, सब ठीक चल रहा है न?'**

**बूढ़ा रामजीके चाल-चलनसे भलीभाँति परिचित था। उसे मालूम था कि वह बापका पैसा पानीकी तरह मौज-मस्ती और मित्रमण्डलीमें उड़ा रहा है।**

**रामजीने कहा—'चाचाजी, अब आप ही मेरे लिये पिताजीकी जगह हैं। बड़ा अच्छा हुआ जो आप आ गये। कुछ ही दिनों बाद दीवाली है। चार दिन यहीं बिताइये। आपका मुझपर बहुत प्रेम है। बताइये, आपको कौन-सा पकवान अच्छा लगता है? भगवान्‌की दयासे मुझे कोई कमी नहीं है।'**

**बूढ़ेकी पसन्दका गूजा बना। मित्रमण्डली दीवालीके स्नान आदिसे निवृत्त हो भोजनको बैठी। बूढ़े चाचाजी भी पंक्तिमें आ बैठे। भोजन परोसा गया। चाचाजीकी थालीमें तला हुआ ताजा गूजा परोसा गया। मुँहमें रखते ही उन्होंने कहा—'बेटा! गूजा बासी है, छिः!'**

**रामजीने समझाया—'चाचाजी! गूजा अभी-अभी तलकर झरनेसे उतारा गया है। घी निथरनेपर आपको परोसा गया है। सारा सामान ताजा है। फिर आप बासी कैसे कह रहे हैं?'**

**बूढ़ेने कहा—'बेटा! इसमें पचीस साल पुरानी गन्ध आ रही है। यह बहुत ही बासी है। मेरे साथी श्यामजीने कितने कष्टसे पैसा कमाया। उन्हें गुजरे एक ही साल हुआ, इसी बीच तुमने आधी सम्पत्ति उड़ा दी; तब आगे क्या करोगे! तुम अपने परिश्रमसे कमाये धनसे गूजा बनाते तो मैं उसे ताजा कहता। ताजा गूजा मुझे बड़ा ही पसन्द है, पर मालूम पड़ता है कि वह मेरे नसीबमें नहीं।'**

**बूढ़ेकी बातें सुन सभी मित्र सकपकाये। रामजीने उनके चरण छुए और कसम खायी कि 'अबसे मैं अपने श्रमकी ही रोटी खाऊँगा। अगले साल जरूर आइये, आपकी पसन्दका गूजा निश्चय ही खिलाऊँगा।'**

# पूर्वजन्मके कर्म प्रभावित करते हैं स्वास्थ्य

( प्रो० श्रीअनूपकुमारजी गक्खड़ )

माताके आचरण एवं खानपानमें कोई त्रुटि न होते हुए भी कुछ बच्चे बीमार ही पैदा होते हैं। यहाँपर ये दोष गर्भावस्थामें माताकी जीवनशैलीके कारण नहीं, अपितु पूर्वजन्मके कर्म होते हैं। इसी तरह बहुत बार जो रोग आसानीसे ठीक हो सकते हैं, उचित चिकित्सा करनेपर भी उनमें वांछित लाभ प्राप्त नहीं होता। आयुर्वेदके अनुसार इन सबका कारण पूर्वजन्मके कर्म ही हैं। व्यवहारमें कहा जाता है कि हम कर्म अपनी इच्छाके अनुसार कर सकते हैं, लेकिन उनके फल निश्चित रूपसे हमारे कर्मोंके अनुसार ही होते हैं। कर्म अच्छे हों या बुरे, उनका फल निश्चित रूपसे भोगना ही पड़ता है। आयुर्वेदमें कहा है कि बिना फल भोगे कर्मोंका क्षय नहीं होता और कर्म मनुष्यके साथ लीन रहते हैं। पिछले जन्मके कर्मोंको दैव एवं इस जन्मके कर्मोंको पुरुषकार (पुरुषार्थ) कहा जाता है।

**दैवमात्मकृतं विद्यात् कर्म यत् पौर्वदैहिकम्।**
**स्मृतः पुरुषकारस्तु क्रियते यदिहापरम्॥**

(चरकसंहिता-विमानस्थान ३। ३०)

बहुत बार बुद्धिमान् चिकित्सकके द्वारा भी साध्य रोगीके रोगकी चिकित्सामें लाभ नहीं होता, तो उसमें दैवकी विपरीतता कारण होती है।

बीस प्रकारके योनिरोगोंमें मिथ्या आहार-विहार, आर्तव और शुक्रदुष्टिके साथ-साथ दैवको भी कारण कहा गया है।

**मिथ्याचारेण ताः स्त्रीणां प्रदुष्टेनार्तवेन च।**
**जायन्ते बीजदोषाच्च दैवाच्च शृणु ताः पृथक्॥**

(चरकसंहिता-चिकित्सास्थान ३०। ८)

चरकके अनुसार विप्र, गुरुका तिरस्कार एवं अन्य पापकर्मका आचरण करनेवाले व्यक्ति कुष्ठरोगसे ग्रसित होते हैं। ब्राह्मण, स्त्री, सज्जन व्यक्तियोंकी हत्या करनेसे तथा परद्रव्यहरणके फल भोगनेका स्वरूप कुष्ठरोगकी उत्पत्तिके रूपमें परिलक्षित होता है। कुष्ठरोगको कर्मज व्याधि कहा है और अगर कोई व्यक्ति कुष्ठरोगसे मृत्युको प्राप्त होता है, तो वह अगले जन्ममें भी कुष्ठसे ग्रसित होता है। इसलिये कुष्ठसे अधिक दुःखदायी और दूसरा कोई रोग नहीं है।

**ब्रह्मस्त्रीसज्जनवधपरस्वहरणादिभिः ।**
**कर्मभिः पापरोगस्य प्राहुः कुष्ठस्य सम्भवम्॥**
**म्रियते यदि कुष्ठेन पुनर्जातेऽपि गच्छति।**
**नातः कष्टतरो रोगो यथा कुष्ठं प्रकीर्तितम्॥**

(सुश्रुतसंहिता-निदानस्थान ५। ३०-३१)

पूर्वदेहसे किये गये अनुचित कर्म भी इस जन्ममें आगन्तुक उन्मादके कारण होते हैं।

**देवर्षिगन्धर्वपिशाचयक्षरक्षः पितृणामभिधर्षणानि।**
**आगन्तुहेतुर्नियमव्रतादि मिथ्याकृतं कर्म च पूर्वदेहे॥**

(चरकसंहिता-चिकित्सास्थान ९। १६)

पूर्वजन्ममें किये गये कर्मोंके आधारपर ही गर्भमें पैदा होनेपर उसका भवितव्य होता है और दैवयोगसे मनमें उसी प्रकारके दौर्हृदयकी आकांक्षा उत्पन्न होती है।

**कर्मणा चोदितं जन्तोर्भवितव्यं पुनर्भवेत्।**
**यथा तथा दैवयोगाद्दौर्हृदं जनयेद्धृदि॥**

(सुश्रुतसंहिता-शारीरस्थान ३। २९)

अर्शरोगकी उत्पत्तिमें दैव अर्थात् पूर्वजन्मकृत कर्म भी कारण हैं।

**दैवाच्च ताभ्यां कोपो हि सन्निपातस्य तान्यतः।**
**असाध्यान्येवमाख्याताः सर्वे रोगाः कुलोद्भवाः॥**

(अष्टांगहृदय निदानस्थान ७। ७)

शिशुके कर्णवेधन करनेके लिये सुश्रुतद्वारा उसका दैवकृत छिद्रमें वेधन करनेका निर्देश है।

**प्रलोभ्याभिसान्त्वयन् भिषग्वामहस्तेनाकृष्य कर्णं दैवकृते छिद्र आदित्यकरावभासिते शनैः शनैर्दक्षिण-हस्तेनर्जु विध्येत्, प्रतनुकं सूच्या, बहलमारया, पूर्वं दक्षिणं कुमारस्य, वामं कुमार्याः, ततः पिचुवर्तिं प्रवेशयेत्॥** (सुश्रुतसंहिता-सूत्रस्थान १६। ३)

नवजात शिशुमें रोना, स्तनपान, हास, त्रास

आदिका बिना मस्तिष्कके विकसित हुए होना; पिछले जन्मोंके कारण ही होता है। एक ही माताके दो पुत्रोंमें रंग, स्वर, आकृति, चेहरा, मन, ज्ञान और भाग्य या प्रारब्धका भिन्न होना, श्रेष्ठ और नीचकुलमें जन्म लेना, दासता अथवा भोगविलासमें जिन्दगी काटना, शरीरपर राजचिह्न अथवा दरिद्रताके लक्षणोंका होना, पूर्वजन्मके वृत्तान्तका स्मरण होना—ये सब पूर्वजन्मके कर्मोंके कारण हैं।

अपना किया हुआ कर्म नहीं छोड़ा जा सकता, उसका विनाश नहीं हो सकता। पूर्वजन्ममें किया हुआ भाग्य नामक आनुबन्धिक अर्थात् आत्माके साथ परलोकमें भी निश्चित रूपसे बँधा हुआ है। उसीका फल यह है कि बालक माता-पितासे भिन्न प्रकृतिके उत्पन्न होते हैं। हमारे यहाँ किये कर्मसे दूसरा जन्म होगा। जिस तरह बीजसे फलका अनुमान होता है, उसी तरह कर्मसे पुनर्जन्म और पुनर्जन्मसे किये गये कर्मका अनुमान होता है।

**अत एवानुमीयते—यत्—स्वकृतमपरिहार्यमविनाशि पौर्वदेहिकं दैवसंज्ञकमानुबन्धिकं कर्म, तस्यैतत् फलम्, इतश्चान्यद्भविष्यतीति, फलाद्बीजमनुमीयते, फलं च बीजात्॥**

(चरकसंहिता-सूत्रस्थान ११। ३१)

इसके आगे चरकने स्पष्ट किया है कि पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, आकाश और चेतना—इन छः धातुओंके समुदायके मिलनेसे गर्भ उत्पन्न होता है। कर्ता और करणके मिलनेसे क्रिया उत्पन्न होती है। कर्ता आत्मा, करण स्त्रीपुरुष। उनके संयोगसे गर्भाशयरूप क्षेत्रमें जन्म होता है। किये हुए कर्मका फल होता है, न किये कर्मका फल नहीं होता। जिस प्रकार बिना बीजके अंकुर नहीं होता, वैसे कर्मके अनुसार ही समान फल मिलता है; क्योंकि एक जातिके बीजसे दूसरी जातिका फल नहीं उत्पन्न होता है।

**षड्धातुसमुदयाद्गर्भजन्म, कर्तृकरणसंयोगात् क्रिया, कृतस्य कर्मणः फलं नाकृतस्य, नाङ्कुरोत्पत्तिरबीजात्, कर्मसदृशं फलं, नान्यस्माद्बीजादन्यस्योत्पत्तिः, इति युक्तिः॥** (चरकसंहिता-सूत्रस्थान ११। ३२)

शुक्र एवं शोणितके निर्दुष्ट रहनेपर एवं भूतोंके संसर्गसे जीवके गर्भमें आनेसे स्त्री गर्भ धारण कर लेती है। जीवका गर्भाशयमें आनेका कारण पूर्वजन्मकृत कर्मोंके योगसे होता है।

*बोध-कथा—*

## गरीबोंकी उपेक्षा पूरे समाजके लिये घातक है

**स्कॉटलैण्डके एक नगरमें विपत्तिकी मारी एक दरिद्र स्त्री आयी। उसके पास न रहनेको स्थान था और न भोजनको अन्न। वह बुढ़िया हो चुकी थी, इससे मजदूरी करनेमें भी असमर्थ थी। उसने घर-घर भटककर शरण चाही कि अस्तबलके ही एक कोनेमें उसे कोई आश्रय दे दे; किंतु किसीने उसकी दुर्दशा देखकर भी दया नहीं की। उसे नगरके बाहर एक खुले स्थानमें पड़े रहना पड़ा। भूख और सर्दीके मारे वह बीमार हो गयी। भला दरिद्रकी चिकित्सा कौन करता, बीमारी बढ़ती गयी और अन्तमें वह छूतसे फैलनेवाली बीमारीमें बदल गयी।**

**वह दरिद्र वृद्धा तो मर गयी, किंतु उसके शरीरमें रोगके जो कीटाणु उत्पन्न हुए थे, उन्होंने पूरे नगरमें वह रोग फैला दिया। ऐसा घर कोई कदाचित् ही बचा हो, जिसमें उस रोगसे उस समय कोई मरा न हो। नगरमें हाहाकार मच गया।**

**अंग्रेज विद्वान् कार्लाइलने इस घटनाके सम्बन्धमें लिखा है—'इन धनवानोंने तो जीवनमें उस दरिद्र नारीको अपनी बहिन स्वीकार नहीं किया था; किंतु उसकी मृत्युके पश्चात् उन्हें स्वीकार करना पड़ा कि सचमुच वह उनकी भगिनी थी; क्योंकि उसके सुख एवं स्वास्थ्यमें ही पूरे नगरका सुख और स्वास्थ्य सन्निहित था।'**

—सुदर्शनसिंह 'चक्र'

# श्रीरामचरितमानसमें मायाके प्रभावका निरूपण

( डॉ० श्रीफूलचन्द प्रसादजी गुप्त )

श्रीरामचरितमानस मानव-जीवनोद्धारका प्रशस्त महाग्रन्थ है। यह महाग्रन्थ जीवन्मुक्तिके मार्गका दिग्दर्शन कराता है और परब्रह्म परमात्माकी भक्तिकी प्रेरणा देता है। ईश्वर-भक्तिके मार्गमें आनेवाली बाधाओंसे पार जानेका उपाय भी बताता है। ईश्वरभक्तिमें मायाको बाधक माना गया है। माया बन्धनकारिणी और प्रभावकारिणी है। यह मनको विषयोंमें आसक्तकर मनुष्यको नचाती है। सुर, नर, मुनि, ज्ञानी, ध्यानी सभी इसके प्रभावसे बच नहीं सके।

भगवान् श्रीरामजी अयोध्यावासियोंसे मायाके प्रभावका वर्णन करते हुए कहते हैं कि यह अविनाशी जीव (अण्डज, स्वेदज, जरायुज और उद्‌भिज्ज) चार खानों और चौरासी लाख योनियोंमें चक्कर लगाता रहता है। मायाकी प्रेरणासे काल, कर्म, स्वभाव और गुणसे घिरा हुआ यह सदा भटकता रहता है।

**आकर चारि लच्छ चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी॥**
**फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा॥**

(रा०च०मा० ७।४४।४-५)

भगवान् श्रीरामने मायाके विषयमें पूछनेपर

लक्ष्मणजीको बहुत सरल और स्पष्ट शब्दोंमें समझाया कि मैं और मेरा, तू और तेरा यही माया है, जिसने सभी जीवोंको अपने वशमें कर लिया है। इन्द्रियोंके विषय और जहाँतक मन जाता है, वह सभी माया है।

**मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया॥**
**गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई॥**

(रा०च०मा० ३।१५।२-३)

मायाका प्रभाव व्यापक है। यह अत्यन्त प्रभावशालिनी है। याज्ञवल्क्यजीने भरद्वाजजीसे पूछा कि नारदजी-जैसा ज्ञानी कैसे मायाके वशीभूत हो गया? तो भरद्वाजजीने कहा कि भगवान् श्रीरामकी माया अत्यन्त प्रचण्ड है। इस संसारमें ऐसा कौन जन्मा है, जिसे वह मोहित न कर दे।

**अति प्रचंड रघुपति कै माया। जेहि न मोह अस को जग जाया॥**

(रा०च०मा० १।१२८।८)

गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं कि ऐसा देवता, मनुष्य अथवा मुनि कोई नहीं है, जिसे भगवान्‌की प्रबल माया मोहित न कर दे। ऐसा मनमें विचार करते हुए मायाके स्वामी भगवान् श्रीरामका भजन करना चाहिये।

**सुर नर मुनि कोउ नाहिं जेहि न मोह माया प्रबल।**
**अस बिचारि मन माहिं भजिअ महामाया पतिहि॥**

(रा०च०मा० १।१४०)

भगवान् श्रीकृष्णने भी कहा है कि मेरी माया बड़ी दुस्तर है, परंतु जो केवल मुझको ही निरन्तर भजते हैं, वे इस मायाको उल्लंघन कर जाते हैं अर्थात् संसारसे तर जाते हैं।

**दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।**
**मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥**

(श्रीमद्भगवद्गीता ७।१४)

अविद्या (अज्ञान) ही माया है। अविद्याके कारण ही असत्‌में सत्‌की प्रतीति होती है। 'ईश्वर सत्य है और जगत् मिथ्या' इसका भान नहीं होता है। संसार ही सत्य जान पड़ता है। मायासे मन आबद्ध होता है। माया मनको आकर्षित करती है और मायासे बँधा मन, इन्द्रियोंको विषयोंके प्रति प्रेरित करता है। ऐसेमें मनुष्य मायाके अधीन होकर विषयोंमें आसक्त होकर क्षणिक

सुखोपभोगमें अपने अमूल्य मानव-जीवनकी सार्थकताको खो देता है।

काकभुशुण्डिजी गरुड़जीसे कहते हैं कि जीव ईश्वरका अंश है। अतएव वह अविनाशी, चेतन, निर्मल और स्वभावसे ही सुखकी राशि है, पर वह मायाके वशीभूत होकर तोते और वानरकी भाँति अपने-आप ही बँध जाता है।*

**ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥**
**सो मायाबस भयउ गोसाईं। बँध्यो कीर मरकट की नाईं॥**

(रा०च०मा० ७। ११७। २-३)

आगे उन्होंने कहा कि जीव अनेक प्रकारके संसृति (जन्म-मरणादि)-के क्लेश पाता है। हे पक्षिराज! हरिकी माया अत्यन्त दुस्तर है, वह सहजहीमें तरी नहीं जा सकती।

**तब फिरि जीव बिबिधि बिधि पावइ संसृति क्लेस।**
**हरि माया अति दुस्तर तरि न जाइ बिहगेस॥**

(रा०च०मा० ७। ११८ क)

मोह, काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सर, चिन्ता—ये सभी मायाके परिवार हैं। काकभुशुण्डिजी गरुड़जीसे कहते हैं कि किस-किसको मोहने अन्धा नहीं किया? जगत्में ऐसा कौन है, जिसे कामने न नचाया हो? तृष्णाने किसको मतवाला नहीं बनाया? क्रोधने किसका हृदय नहीं जलाया? ज्ञानी, तपस्वी, शूरवीर, कवि, विद्वान् सभीकी लोभने विडम्बना की है। धनके मदने सबको टेढ़ा और प्रभुताने सबको बहरा बनाया है। मृगनयनीके नेत्ररूपी बाण किसे नहीं लगे हैं? मान और मदने किसीको नहीं छोड़ा है। डाहने किसको कलंक नहीं लगाया? चिन्तारूपी साँपिनने किसको नहीं डँसा? जगत्में ऐसा कौन है, जिसे माया न व्यापी हो? मनोरथ कीड़ा है, शरीर लकड़ी है। ऐसा धैर्यवान् कौन है, जिसके शरीरमें यह कीड़ा न लगा हो? पुत्र, धन और लोकप्रतिष्ठाकी प्रबल इच्छाओंने किसकी बुद्धिको मलिन नहीं कर दिया? इतना बड़ा मायाका परिवार है और इनका प्रभाव व्यापक है।

काकभुशुण्डिजी कहते हैं कि मायाका बड़ा बलवान् परिवार है। यह अपार है, इसका वर्णन कौन कर सकता है? शिवजी और ब्रह्माजी जिससे डरते हैं, तब दूसरे जीव किस गिनतीमें हैं।

**यह सब माया कर परिवारा। प्रबल अमिति को बरनै पारा॥**
**सिव चतुरानन जाहि डेराहीं। अपर जीव केहि लेखे माहीं॥**

(रा०च०मा० ७। ७१। ७-८)

वे कहते हैं कि मायाकी प्रचण्ड सेना संसारमें छायी हुई है। कामादि (काम, क्रोध और लोभ) उसके सेनापति हैं और दम्भ, कपट तथा पाखण्ड उसके योद्धा हैं।

**ब्यापि रहेउ संसार महुँ माया कटक प्रचंड।**
**सेनापति कामादि भट दंभ कपट पाषंड॥**

(रा०च०मा० ७। ७१क)

---

* ***'बँध्यो कीर मरकट की नाईं'***—तुलसीदासजी महाराजने बन्दर और तोतेका दृष्टान्त दिया। शिकारी लोग तोता और बन्दरको पकड़नेकी युक्ति करते हैं। तोतेको पकड़नेके लिये वे जमीनमें थोड़ी दूरीके अन्तरमें खूँटियाँ गाड़ते हैं और जमीनसे थोड़ी ऊँचाईपर इन दोनों खूँटियोंके बीच तार बाँध देते हैं। तारमें बाँसकी पोली नरसल (खोखली नली) डाल देते हैं, जिससे वह घूमती रहे। फिर उसके आगे अनाजके दाने बिखेर देते हैं। तोता वह दाना खानेके लिये आता है। स्वाभाविक रीतिसे वह ऊँचाईपर बैठनेके लिये तारमें डोरी डाली हुई पँगोलीके (नलीके) ऊपर जाकर बैठता है। उसी समय पँगोली उसके भारसे तुरन्त घूम जाती है और तोता उलटा लटक जाता है। तोता स्वयंके पंजेसे पँगोलीको पकड़े रखता है। पकड़ उसकी स्वयंकी है, परंतु वह छोड़ सकता नहीं और अन्तमें शिकारी उसको पकड़ लेता है।

बन्दर भी उसी प्रकारसे पकड़ लिया जाता है। शिकारी सँकरे मुँहवाली हाँड़ी जमीनमें गाड़ देता है। हाँड़ीमें थोड़ेसे चने डाल देता है और स्वयं दूर जाकर खड़ा हो जाता है। वानरको हाँड़ीमें चने देखकर आनन्द होता है। वह जल्दीमें चना लेनेके लिये दोनों हाथ हाँड़ीमें डालता है और चनोंकी मुट्‌ठी भर लेता है, मुट्‌ठीमें चना होनेके कारण मुट्‌ठी फूल (फैल) जाती है, इस कारणसे वह हाथ बाहर निकाल नहीं सकता। वानरको भ्रम हो जाता है कि हाँड़ीमें भूत है, जिसने अन्दरसे उसका हाथ पकड़ रखा है। वास्तवमें वानरको पकड़ा किसीने भी नहीं। वानरको चना अत्यन्त प्रिय है, इसलिये मुट्‌ठीमेंसे चना छोड़ देनेकी इच्छा उसमें होती ही नहीं। चना मुट्‌ठीमेंसे छोड़ दे तो तुरंत उसके हाथ बाहर निकल आयें और वानरका बन्धन छूट जाय। वानर अपने हाथों ही बन्धनमें पड़ा है, फिर भी ऐसा मानता है कि किसीने उसके हाथ पकड़ रखे हैं।

इसी प्रकार यह संसार भी एक हाँड़ीके समान है। मायाने विषयरूपी चने उसमें भर रखे हैं। अहंता और ममतारूपी चने उसमें भरे हैं। मन वानरके समान है। मनने विषयोंको पकड़ रखा है। मनुष्य ये विषयरूपी चने छोड़ता नहीं, इस कारणसे वह बन्धनमें पड़ जाता है।

असत्‌को सत् समझना ही माया है। काकभुशुण्डिजी गरुड़जीसे कहते हैं कि जब नौका चलती है तो नौकापर बैठा व्यक्ति जगत्‌को चलता हुआ देखता है और मोहवश अपनेको अचल समझता है। बालक चक्राकार दौड़ते हैं, घूमते हैं; पर उन्हें लगता है कि घर आदि घूम रहे हैं। वे आपसमें एक-दूसरेको झूठा कहते हैं।

**नौकारूढ़ चलत जग देखा। अचल मोहबस आपुहि लेखा॥**
**बालक भ्रमहिं न भ्रमहिं गृहादी। कहहिं परस्पर मिथ्याबादी॥**

(रा०च०मा० ७।७३।५-६)

मायाके वश मन्दबुद्धि और भाग्यहीन जिनके हृदयपर अनेक प्रकारके परदे पड़े हैं, वे मूर्ख हठके वश होकर सन्देह करते हैं और अपना अज्ञान श्रीरामजीपर आरोपित करते हैं।

**मायाबस मतिमंद अभागी। हृदयँ जमनिका बहुबिधि लागी॥**
**ते सठ हठ बस संसय करहीं। निज अग्यान राम पर धरहीं॥**

(रा०च०मा० ७।७३।८-९)

मायाके परिवारका बहुत व्यापक प्रभाव है। सुग्रीवजी भगवान् श्रीरामसे कहते हैं—

**नारि नयन सर जाहि न लागा। घोर क्रोध तम निसि जो जागा॥**
**लोभ पाँस जेहिं गर न बँधाया। सो नर तुम्ह समान रघुराया॥**

(रा०च०मा० ४।२१।४-५)

विभीषणने रावणसे काम, क्रोध, मद और लोभको नरकका मार्ग बताया और इनको त्यागकर भगवान् श्रीरामको भजनेके लिये कहा।

**काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ।**
**सब परिहरि रघुबीरहि भजहु भजहिं जेहि संत॥**

(रा०च०मा० ५।३८)

काकभुशुण्डिजीने गरुड़जीसे कहा कि सब रोगोंका जड़ मोह है। उन व्याधियोंसे और बहुत-से शूल उत्पन्न होते हैं। काम वात है, लोभ बढ़ा हुआ कफ है और क्रोध पित्त है, जो सदा छाती जलाता रहता है। ममता दाद है, ईर्ष्या खुजली है, हर्ष-विषाद गलेके रोगोंकी अधिकता है। पराये सुखको देखकर जो जलन होती है, वही क्षय है। दुष्टता और मनकी कुटिलता ही कोढ़ है। अहंकार अत्यन्त दुःख देनेवाला डमरू (गाँठका रोग) है। दम्भ, कपट, मद और मान नहरुआ (नसोंका) रोग है। तृष्णा बड़ा भारी उदरवृद्धि (जलोदर) रोग है और पुत्र, धन तथा मानकी इच्छा तिजारी है। मत्सर और अविवेक दो प्रकारके ज्वर हैं।

वे कहते हैं कि एक ही रोगके वश होकर मनुष्य मर जाते हैं, फिर ये तो बहुत-से असाध्य रोग हैं। ये जीवको निरन्तर कष्ट देते रहते हैं, ऐसी दशामें वह समाधि (शान्ति)-को कैसे प्राप्त करे?

**एक ब्याधि बस नर मरहिं ए असाधि बहु ब्याधि।**
**पीड़हिं संतत जीव कहुँ सो किमि लहै समाधि॥**

(रा०च०मा० ७।१२१क)

इन रोगोंके समूल नाशके लिये सद्‌गुरु-वैद्यके वचनोंमें विश्वास, विषयोंके प्रति अनासक्ति (संयम), भगवान्‌की भक्तिरूपी संजीवनी जड़ी और श्रद्धासे पूर्ण बुद्धि अनुपानका संयोग होना आवश्यक है। इनके संयोगसे ये रोग नष्ट हो जाते हैं।

माया और भक्तिमें भक्ति श्रीरामको प्यारी है। इसीसे माया डरती है। जिसके हृदयमें श्रीरामभक्ति निवास करती है, उसे देखकर माया सकुचा जाती है, उसपर वह अपनी प्रभुता नहीं दिखा पाती। श्रीरामभक्ति ही मायासे मुक्तिका सरल उपाय है। इस रहस्यको जो भगवान्‌की कृपासे जान जाता है, उसे सपनेमें भी मोह नहीं होता।

**यह रहस्य रघुनाथ कर बेगि न जानइ कोइ।**
**जो जानइ रघुपति कृपाँ सपनेहुँ मोह न होइ॥**

(रा०च०मा० ७।११६क)

गोस्वामीजीद्वारा रचित श्रीरामचरितमानसमें माया, मायाके प्रभाव, मायाके परिवार और मायासे मुक्तिके उपायका वर्णन है। माया और उसके परिवारसे बचनेका एकमात्र उपाय ईश्वर-भक्ति है। ईश्वरकी शरण प्राप्तकर और विषयोंसे विरक्त होकर मायासे मुक्ति सम्भव है। ईश्वर ही मायाके स्वामी हैं। अतः उनकी ही भक्तिसे मायाके प्रभावसे मुक्त हुआ जा सकता है। भगवान् कहते हैं—

**तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना॥**

(रा०च०मा० ५।४८।३)

विषयोंमें अनासक्ति और ईश्वर-भक्ति मायासे मुक्तिका प्रबल साधन है। जो विषयोंमें आसक्त नहीं होते और ईश्वर-भक्तिमें लीन रहते हैं, वे मायासे मुक्त हो जाते हैं।

संत-चरित—

# पंचरसाचार्य श्रीरामहर्षणदासजी महाराज

( विद्यावाचस्पति डॉ० श्रीराजेशजी उपाध्याय 'नार्मदेय' )

**नित्यं स्मरामि तिलकांकितभव्यभालं**
**स्वर्णच्छवि शिवस्वरूपमहेतुदानिम्।**
**श्रीरामनाम अविराम रटन्महान्तं**
**श्रीरामहर्षणप्रभुं प्रेमावतारम्॥**

परम करुणामय लीलाधारी परमात्माकी अहैतुकी लीलासे इस धरापर समय-समयमें अवतारी महापुरुषोंका आगमन होता रहता है—

**संत उदय संतत सुखकारी । बिस्व सुखद जिमि इंदु तमारी॥**

ऐसे ही सन्त-महापुरुषोंमें एक हैं प्रेमरामायण नामक महाकाव्य ग्रन्थके रचयिता सद्गुरु प्रेममूर्ति पंचरसाचार्य श्रीमद्रामहर्षणदासजी महाराज।

आचार्यश्रीका अवतरण विन्ध्यक्षेत्र मध्यप्रदेशके पौड़ी नामक ग्राममें सम्वत् १९७४ ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्थीको सूर्योदयकी दिव्य वेलामें हुआ था। आपके पूज्य पिताका नाम पं० श्रीरामजीवनशरण था, आप सरयूपारीण त्रिपाठी ब्राह्मण थे। आपका पालन-पोषण आपकी परमसाध्वी माताजीने किया था, कारण, आपके पिता जब जगन्नाथपुरी गये थे, वहीं उनके पांचभौतिक शरीरका अन्त हो गया था। बचपनसे मस्तकमें दिव्य ऊर्ध्वपुण्ड्र रेखाएँ होनेके कारण आपको तिलकधारी कहा जाता था, चक्रांकित हस्तरेखाएँ आपकी अद्भुत थीं। आप जब सात वर्षके थे, तभी अयोध्याके अनुरागी सन्त श्रीकौशलकिशोर-दासजी महाराजने आपको लीलास्वरूपोंके पदमें अभिषिक्त किया और आपके द्वारा बहुत समयतक श्रीरामलीलाका सुख सन्तोंको प्राप्त होता रहा।

आपका अध्ययन जन्मभूमिके निकटवर्ती खजुरीताल तथा अमरपाटनके विद्यालयमें हुआ, आप अध्यापक भी रहे। आपको एक रात्रिके लगभग ४ बजे भुवनमोहन श्यामस्वरूपके दर्शन हुए, आपने प्रातः अयोध्याजीकी ओर प्रस्थान किया और जगद्गुरु १००८ श्रीराम वल्लभाशरणजी महाराजके कृपापात्र न्याय-वेदान्तके निष्णात आचार्य स्वामी १००८ श्रीअखिलेश्वरदासजी महाराजसे विरक्त वेशकी दीक्षा ग्रहण की। सन् १९५३से श्रीगुरुजीके द्वारा श्रीराघवेन्द्रकी अनेक गुप्त एवं प्रकट रसमयी लीलाओंका प्रेमी भक्तोंके बीच आविर्भाव हुआ—'**श्रीरामः शरणं मम**' शरणागतिका यह चरम मंत्र आपके जीवनमें एक अलौकिक प्रकरणके साथ प्रविष्ट हुआ और इसे आपने अपने नित्य संकीर्तनका विषय बनाया, जिसे श्रीरामहर्षण-मण्डलमें एकान्तिक संकीर्तनके नामसे जाना गया। आपके अनुयायियोंमें पाँचों ही रसोंके उपासक भक्तगण हैं, परंतु आपका 'मैथिल सख्यरस' प्रधान है। सन् १९६२ में सोन एवं महानदीके पवित्र संगम श्रीमार्कण्डेय आश्रममें आपका श्रीरामनवमीके दिन पदार्पण हुआ, वहाँ श्रीप्रेमयज्ञ हुआ। इसी आश्रममें 'प्रेमरामायण' नामक अद्भुत महाकाव्य आपके द्वारा एक वर्षके अन्दर लिखा गया। वेद-वर्णित ब्रह्म रसमय है। वह सभी रसिक सन्तोंसे अविदित नहीं है, श्रीसीतारामजी महाराज स्वयं रसरूप हैं, युगल मूर्तियोंका धर्म आनन्दमय है, जिस जनके हृदयकमलमें आप कुटीर बनाकर बसते हैं, वह भक्त हृदय भी आपकी लीलास्थली बन जाता है—यह सद्गुरुका मानना है। भक्ति, भक्त, भगवान् अर्थात् प्रेम, प्रेमी, प्रेमास्पद—तीनोंका सम्मिश्रण ही महारस, महाभाव एवं परम परमानन्द है।

प्रेमरामायणमें प्रेम-प्रेमी एवं प्रेमास्पदके चरित-चित्रणका प्रयास है। प्रेमरामायणकी भूमिकामें गुरुजी स्वयं स्वीकार करते हैं कि 'दासने प्रेमरामायणके लेखनका प्रारम्भ किसी जीव एवं अपने कल्याण एवं

आनन्द पानेहेतु नहीं किया; क्योंकि भगवान् ही भली-भाँति सबके संरक्षक, उद्धारक और आनन्द-प्रदायक हैं।'

प्रेमरामायणकी लेखन-शैलीकी पृष्ठभूमि अध्यात्म है। श्रीप्रेमरामायणके प्रधान वक्ता श्रीलखनलालजी तथा श्रोता श्रीहनुमान्जी महाराज हैं। परमधाम साकेतमें श्रीरामजीने विदेहराजनन्दिनीजूसे जो मिथिलाकी लीलाका वर्णन किया है, उसी लीलाका चिन्तन प्रेमरामायणमें है। प्रथम श्रीहनुमान्जीका लक्ष्मणजीके कीर्तन-भवनमें कीर्तन-रसमें सम्मिलित होना, एकान्तमें श्रीलक्ष्मणजीसे रामचरितका श्रवण, मिथिलाका प्रसंग चलनेपर श्रीलक्ष्मीनिधिकी प्रभु-प्रीति एवं उनके जन्म-कर्म जाननेकी जिज्ञासा, लखनलालजीका मिथिलेशकुमारके जन्मकी कथासे लेकर साकेतधाममें श्रीरामजीका लीला-संकल्प, परिकरोंसहित धराधाममें पदार्पणका प्रिय प्रसंग कहना, लक्ष्मीनिधिजीकी बाललीला और ब्याह-लीलानिरूपणके साथ उनका पूर्व रामानुराग वर्णन करते हुए सीता-जन्मकी कथा कहना, भ्रातृ-भगिनप्रेमका निरूपण, अनेक मधुर-मधुर प्रसंग, चरित्र-संवाद, ज्ञान-वैराग्यका यथार्थस्वरूप, कर्मका रहस्य, भक्ति-प्रेमरहस्य, शरणागति धर्म तथा भागवत धर्मका विशद वर्णन किया गया है। प्रेमरामायणमें मिथिलाकाण्ड, साकेतकाण्ड, चित्रकूटकाण्ड, वन-विरह-काण्ड, सम्प्रयोग काण्ड, ज्ञानकाण्ड तथा प्रस्थानकाण्डका प्रयोग किया गया है।

यह प्रारम्भ होता है—

**रामेति सर्वबीजस्य तत्त्वज्ञानप्रकाशिनीम्,**
**देवीं सरस्वतीं वन्दे मंगलानां च रूपिणीम्।**
**रामभक्तं सुरश्रेष्ठं विघ्नघ्नं गणनायकम्,**
**वन्देऽहं पार्वतीपुत्रं सिद्धं मंगलरूपिणम्॥**
**मातरं गिरिजां वन्दे श्रद्धाभक्तिस्वरूपिणीम्।**
**भूतेशं भव्य रूपं च वन्दे शं सम्प्रदायकम्॥**
**ध्यावहुँ गुरु पद रेख सुहावन। त्रिबिध ताप भयभेद मिटावन॥**

और इस ७३५ पृष्ठके ग्रन्थके अन्तमें लिखा गया है—

**प्रेम स्वरूपा जानकी प्रेमिन सुख दातार।**
**मम त्रिकरण प्रभु प्रेम महँ रमै कृपा सुखसार॥**
**प्रेम रूप रघुनाथ प्रभु प्रेमिन जीवन प्रान।**
**सीय सहित तव प्रेम महँ निशिदिन रहहुँ भुलान॥**
**प्रेमरामायणमिदं सरसं प्रेमप्रदायकम्।**
**कथितं श्रीसौमित्रेण यत्र प्रेमोद्गारः पदे पदे॥**

श्रीसद्गुरुदेव भगवान्की सदा जय हो।

# भवरोगकी दवा

( ब्रह्मलीन श्रद्धेय संत स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज )

- **आत्म-निरीक्षण करना अर्थात् प्राप्त विवेकके प्रकाशमें अपने दोषको देखना।**
- **की हुई भूलको पुनः न दोहरानेका व्रत लेकर सरल विश्वासपूर्वक भगवान्से प्रार्थना करना।**
- **विचारका प्रयोग अपनेपर और विश्वासका दूसरोंपर करना अर्थात् न्याय अपनेपर और प्रेम तथा क्षमा अन्यपर।**
- **जितेन्द्रियता, सेवा, भगवच्चिन्तन और सत्यकी खोजद्वारा अपना निर्माण।**
- **दूसरोंके कर्तव्यको अपना अधिकार, दूसरोंकी उदारताको अपना गुण और दूसरोंकी निर्बलताको अपना बल न मानना।**
- **पारिवारिक तथा जातीय सम्बन्ध न होते हुए भी पारिवारिक भावनाके अनुरूप ही पारस्परिक सम्बोधन तथा सद्भाव अर्थात् कर्मकी भिन्नता होनेपर भी स्नेहकी एकता बनाये रखना।**
- **निकटवर्ती जन-समाजकी यथाशक्ति क्रियात्मक रूपसे सेवा करना।**
- **शारीरिक हितकी दृष्टिसे आहार-विहारमें संयम तथा दैनिक कार्योंमें स्वावलम्बन रखना।**
- **शरीर श्रमी, मन संयमी, बुद्धि विवेकवती, हृदय अनुरागी तथा अहंको अभिमान-शून्य बनाना।**
- **सिक्केसे वस्तु, वस्तुसे व्यक्ति, व्यक्तिसे विवेक तथा विवेकसे सत्यको अधिक महत्त्व देना।**
- **व्यर्थ चिन्तनके त्याग तथा वर्तमानके सदुपयोगद्वारा भविष्यको उज्ज्वल बनाना।** [प्रेषक—एक साधक]

*गो-चिन्तन—*

# तुकारामका गो-प्रेम

सन्त बहिणाबाई और उनके पति गंगाधरराव अपनी प्यारी कपिलाके साथ देहूमें तुकाराम महाराजके दर्शनार्थ आये थे। रास्तेमें एक दिन गंगाधररावको तुकारामसे जलनेवाले वहींके एक ब्राह्मण मम्बाजी मिले। रावके आनेके कारणका पता चलते ही वे आपेसे बाहर हो उठे और लगे तुकोबाको अनाप-शनाप कहने। गंगाधररावसे सहा नहीं गया, उन्होंने कहा—'महाराज! आप मेरी निन्दा प्रसन्नतासे कीजिये, पर भगवद्भक्त तुकोबाकी निन्दाकर व्यर्थ ही पापकी गठरी क्यों बाँध रहे हैं?'

यह सुनकर मम्बाजी रावपर आगबबूला हो उठे और बदला लेनेपर उतारू हो गये।

एक दिन बहिणा और राव तुकोबाके भजनमें मग्न थे। मौका पाकर मम्बाजी धीरेसे उनकी कपिलाको खोल ले गये और उसे बेदम मारकर तहखानेमें छिपा दिया।

भजनके बाद कपिलाको न देखकर बहिणा शोक करने लगी। गाँवभर खोजवाया गया, आस-पासके गाँवोंमें भी लोग भेजे गये, पर कपिलाका कहीं पता न चला। बहिणा उसके बिछोहसे विह्वल हो उठी।

बहिणाकी गाय गुम होनेका तुकोबाको भी भारी क्लेश हुआ। उनका चित्त उद्विग्न हो उठा। दो दिन बाद अकस्मात् स्वप्नमें आकर कपिला फूट-फूटकर रोने लगी और तुकोबासे उबारनेकी बार-बार प्रार्थना करने लगी। गायकी गुहार सुन तुकोबाकी आँखें खुलीं—गायपर पड़ी मारसे तुकोबाकी पीठपर बड़े-बड़े फफोले हो गये थे और सारा शरीर बेरहमीकी मारसे दर्द कर रहा था।

तुकोबाने अपने दर्दकी कुछ परवा नहीं की और गायके लिये अपने सर्वस्व आराध्य प्रभुसे प्रार्थना की।

भगवान्‌ने तुकाराम महाराजकी प्रार्थना सुनी। एकाएक मम्बाजीके घरमें आग लगी और अग्निदेव धू-धूकर उनका सर्वस्व स्वाहा करने लगे। लोग आग बुझाने दौड़ पड़े। इसी बीच उन्हें गायका डकारना सुनायी दिया। सभी ठक्-से रह गये। गाय कहाँ? खोज होने लगी। आखिर तहखाना खोला गया। गाय निकाली गयी। उसकी पीठ मारसे सूज गयी थी। तबतक मम्बाजीको सन्त-निन्दा और गोघातका पूरा दण्ड प्राप्त हो गया था। उनका गगनचुम्बी प्रासाद और उसका सारा सामान राखका ढेर बन गया!

सन्त तुकारामको पता चलते ही वे दौड़ते आये और कपिलाको साष्टांग दण्डवत्‌कर उसके मुँहपर हाथ फेर आँसू बहाने लगे। सन्तका यह गो-प्रेम देख बहिणाबाईके शरीरपर भी सात्त्विक अष्टभाव उमड़ पड़े, वह रोमांचित हो उठी। **[ धेनुकथा-संग्रह ]**

# काशीनरेशकी गो-भक्ति

उन्नीसवीं सदीकी बात है, काशीके सिंहासनपर महाराजा ईश्वरीप्रसादनारायण सिंह विराजमान थे। इनकी गोभक्ति और दयालुता प्रसिद्ध थी। एक बार कुछ कसाई गायोंको लेकर कहीं जा रहे थे, शाम हो जानेके कारण रामनगरमें ही रुक गये। सुबह जब सिपाही कल्पनाथ चौबे अपने शिविरसे निकले, तब देखा कि एक बछिया इनके पास आकर खड़ी हो गयी और इन्हें चाटने लगी। तबतक एकने आकर कहा, यह मेरी है, गायोंके झुंडमेंसे भागकर यहाँ आ गयी है। चौबेजीने कहा—तुम्हारे पास कितनी गायें हैं? उसने कहा, सौसे ऊपर हैं। चौबेजीने कहा, इसे मुझे दे दो, जितना दाम हो, ले लो। उसने न बेचनेकी इच्छासे काफी दाम बताया। चौबेजीने कहा, यहीं रुको, मैं अभी आता हूँ। चौबेजीने मन्त्रीके पास जाकर सारी बात कह दी। मन्त्रीने राजासे जाकर कहा कि कसाई सौसे ऊपर गायोंको लेकर कहीं जा रहे थे, रातमें यहीं रुके थे। सिपाही कल्पनाथ चौबेने अभी मुझे बताया है। राजाने मन्त्रीसे कहा, उसे उचित मूल्य देकर सभी गायोंको अपनी गोशालामें ले आवो। आदेश मिलनेकी देर थी, कसाइयोंके हाथसे छूटकर सभी गायें राजाकी गोशालामें आ गयीं।

इस प्रकार महाराजा ईश्वरीप्रसादनारायण सिंहजीकी दयालुता और गोमाताके प्रति निष्ठाके कारण सैकड़ों गोमाताओंका कसाइयोंके हाथसे उद्धार हो गया और उनके प्राण बच गये। **[ आचार्य पं० श्रीबलदेवजी उपाध्याय ]**

# सुभाषित-त्रिवेणी

## भगवान् सर्वव्यापक हैं
## [God is omnipresent]

**मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय।**
**मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥**

हे धनंजय! मुझसे भिन्न दूसरा कोई भी परम कारण नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत् सूत्रमें सूत्रके मनियोंके सदृश मुझमें गुँथा हुआ है।

There is nothing else besides Me, Arjuna. Like clusters of yarn-beads formed by knots on a thread, all this is threaded on Me.

**रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः।**
**प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु॥**

हे अर्जुन! मैं जलमें रस हूँ, चन्द्रमा और सूर्यमें प्रकाश हूँ, सम्पूर्ण वेदोंमें ओंकार हूँ, आकाशमें शब्द और पुरुषोंमें पुरुषत्व हूँ।

Arjuna, I am the sap in water and the radiance of the moon and the sun; I am the sacred syllable OM in all the Vedas, the sound in ether, and virility in men.

**पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ।**
**जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु॥**

मैं पृथ्वीमें पवित्र* गन्ध और अग्निमें तेज हूँ तथा सम्पूर्ण भूतोंमें उनका जीवन हूँ और तपस्वियोंमें तप हूँ।

I am the pure odour (the subtle principle of smell) in the earth and the brightness in fire; nay, I am the life in all beings and austerity in the ascetics.

**बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्।**
**बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्॥**

हे अर्जुन! तू सम्पूर्ण भूतोंका सनातन बीज मुझको ही जान। मैं बुद्धिमानोंकी बुद्धि और तेजस्वियोंका तेज हूँ।

Arjuna, know Me the eternal seed of all beings. I am the intelligence of the intelligent; the gloy of the glorious am I.

**बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम्।**
**धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ॥**

हे भरतश्रेष्ठ! मैं बलवानोंका आसक्ति और कामनाओंसे रहित बल अर्थात् सामर्थ्य हूँ और सब भूतोंमें धर्मके अनुकूल अर्थात् शास्त्रके अनुकूल काम हूँ।

Arjuna, of the mighty I am the might, free from passion and desire; in beings I am the sexual desire not conflicting with virtue or scriptural injunctions.

**ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये।**
**मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि॥**

और भी जो सत्त्वगुणसे उत्पन्न होनेवाले भाव हैं और जो रजोगुणसे तथा तमोगुणसे होनेवाले भाव हैं, उन सबको तू 'मुझसे ही होनेवाले हैं' ऐसा जान, परन्तु वास्तवमें उनमें मैं और वे मुझमें नहीं हैं

Whatever other entities there are, born of Sattva (the quality of goodness), and those that are born of Rājas (the principle of activity) and Tamas (the principle of inertia), know them all as evolved from Me alone. In reality, however, neither do I exist in them, nor do they in Me.

**[ श्रीमद्भगवद्गीता ७।७—१२ ]**

---

* शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धसे इस प्रसंगमें इनके कारणरूप तन्मात्राओंका ग्रहण है, इस बातको स्पष्ट करनेके लिये उनके साथ पवित्र शब्द जोड़ा गया है।

# व्रतोत्सव-पर्व

## सं० २०७९, शक १९४४, सन् २०२२, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ऋतु, वैशाख-कृष्णपक्ष

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि |
|---|---|---|---|---|
| प्रतिपदा रात्रिमें ११। २ बजेतक | रवि | चित्रा प्रात: ७। ४८ बजेतक | १७ अप्रैल | × × × × |
| द्वितीया ,, ९। ९ बजेतक | सोम | स्वाती ,, ६। ५४ बजेतक | १८ ,, | **वृश्चिकराशि** रात्रिमें ११। ५९ बजेसे। |
| तृतीया ,, ७। २ बजेतक | मंगल | विशाखा प्रात: ५। ४१ बजेतक | १९ ,, | **भद्रा** दिनमें ८। ५ बजेसे रात्रिमें ७। २ बजेतक, **संकष्टी श्रीगणेश-चतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ९। १९ बजे, **मूल** रात्रिशेष ४। १४ बजेसे। |
| चतुर्थी सायं ४। ४३ बजेतक | बुध | ज्येष्ठा रात्रिमें २। ३८ बजेतक | २० ,, | **धनुराशि** रात्रिमें २। ३८ बजेसे, **सायन वृषका सूर्य** दिनमें ९। ५४ बजे। |
| पंचमी दिनमें २। १८ बजेतक | गुरु | मूल ,, १२। ५७ बजेतक | २१ ,, | **मूल** रात्रिमें १२। ५७ बजेतक। |
| षष्ठी ,, ११। ५२ बजेतक | शुक्र | पू०षा० ,, ११। १९ बजेतक | २२ ,, | **भद्रा** दिनमें ११। ५२ बजेसे रात्रिमें १०। ४१ बजेतक, **मकरराशि** रात्रिशेष ४। ५५ बजेसे। |
| सप्तमी ,, ९। २८ बजेतक | शनि | उ०षा० ,, ९। ४५ बजेतक | २३ ,, | × × × × |
| अष्टमी ,, ७। १३ बजेतक | रवि | श्रवण ,, ८। २२ बजेतक | २४ ,, | **श्रीशीतलाष्टमीव्रत।** |
| दशमी रात्रिमें ३। २८ बजेतक | सोम | धनिष्ठा ,, ७। १६ बजेतक | २५ ,, | **भद्रा** सायं ४। १९ बजेसे रात्रिमें ३। २८ बजेतक, **कुम्भराशि** प्रात: ७। ४९ बजेसे, **पंचकारम्भ** प्रात: ७। ४९ बजे। |
| एकादशी ,, २। ४ बजेतक | मंगल | शतभिषा सायं ६। ३० बजेतक | २६ ,, | **वरूथिनी एकादशीव्रत** (स्मार्त्त), **श्रीवल्लभाचार्य-जयन्ती।** |
| द्वादशी ,, १। ६ बजेतक | बुध | पू०भा० ,, ६। ५ बजेतक | २७ ,, | **मीनराशि** दिनमें १२। १२ बजेसे, **एकादशीव्रत** (वैष्णव), **भरणीका सूर्य** रात्रिमें ३। ८ बजे। |
| त्रयोदशी ,, १२। ३५ बजेतक | गुरु | उ०भा० ,, ६। ८ बजेतक | २८ ,, | **भद्रा** रात्रिमें १२। ३५ बजेसे, **मूल** सायं ६। ८ बजेसे, **प्रदोषव्रत।** |
| चतुर्दशी ,, १२। ३३ बजेतक | शुक्र | रेवती रात्रिमें ६। ४० बजेतक | २९ ,, | **भद्रा** दिनमें १२। ३३ बजेतक, **मेषराशि** रात्रिमें ६। ४० बजेसे, **पंचक** समाप्त रात्रि ६। ४० बजे। |
| अमावस्या ,, १। ५ बजेतक | शनि | अश्वनी ,, ७। ४४ बजेतक | ३० ,, | **अमावस्या, मूल** रात्रिमें ७। ४४ बजेतक। |

## सं० २०७९, शक १९४४, सन् २०२२, सूर्य उत्तरायण, वसंत-ग्रीष्म-ऋतु, वैशाख-शुक्लपक्ष

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि |
|---|---|---|---|---|
| प्रतिपदा रात्रिमें २। ४ बजेतक | रवि | भरणी रात्रिमें ९। १६ बजे | १ मई | **वृषराशि** रात्रिमें ३। ४६ बजेसे। |
| द्वितीया ,, ३। ३१ बजेतक | सोम | कृत्तिका ,, ११। १६ बजेतक | २ ,, | × × × × |
| तृतीया रात्रिशेष ५। १८ बजेतक | मंगल | रोहिणी ,, १। ३५ बजेतक | ३ ,, | **श्रीपरशुराम-जयन्ती, अक्षय-तृतीया।** |
| चतुर्थी अहोरात्र | बुध | मृगशिरा रात्रिशेष ४। ७ बजेतक | ४ ,, | **भद्रा** सायं ६। १७ बजेसे, **मिथुनराशि** २। ५१ बजेसे, **वैनायकी श्रीगणेश-चतुर्थीव्रत।** |
| चतुर्थी प्रात: ७। १८ बजेतक | गुरु | आर्द्रा अहोरात्र | ५ ,, | **भद्रा** प्रात: ७। १८ बजेतक। |
| पंचमी दिनमें ९। २१ बजेतक | शुक्र | आर्द्रा प्रात: ६। ४५ बजेतक | ६ ,, | **कर्कराशि** रात्रिमें २। ३९ बजेसे, **आद्यजगद्गुरु श्रीशंकराचार्य-जयन्ती।** |
| षष्ठी ,, ११। १८ बजेतक | शनि | पुनर्वसु दिनमें ९। १८ बजेतक | ७ ,, | **श्रीगंगासप्तमी, श्रीरामानुजाचार्य-जयन्ती।** |
| सप्तमी ,, १२। ५८ बजेतक | रवि | पुष्य ,, ११। ३३ बजेतक | ८ ,, | **भद्रा** दिनमें १२। ५८ बजेसे रात्रिमें १। ३६ बजेतक, **मूल** दिनमें ११। ३३ बजेसे। |
| अष्टमी ,, २। १४ बजेतक | सोम | आश्लेषा ,, १। २७ बजेतक | ९ ,, | **सिंहराशि** दिनमें १। २७ बजेसे। |
| नवमी ,, ३। ४ बजेतक | मंगल | मघा ,, ३। १७ बजेतक | १० ,, | **श्रीसीता-नवमी, श्रीजानकी-जयन्ती, मूल** दिनमें ३। १७ बजेतक। |
| दशमी ,, ३। २२ बजेतक | बुध | पू०फा० ,, ३। ५३ बजेतक | ११ ,, | **भद्रा** रात्रिमें ३। १५ बजेसे, **कन्याराशि** रात्रिमें ९। ५९ बजेसे, **कृत्तिकाका सूर्य** रात्रिमें १०। ६ बजे। |
| एकादशी ,, ३। ९ बजेतक | गुरु | उ०फा० ,, ४। २० बजेतक | १२ ,, | **भद्रा** दिनमें ३। ९ बजेतक, **मोहिनी एकादशीव्रत** (सबका)। |
| द्वादशी ,, २। २५ बजेतक | शुक्र | हस्त ,, ४। १७ बजेतक | १३ ,, | **तुलाराशि** रात्रिमें ४। ३ बजेसे, **प्रदोषव्रत।** |
| त्रयोदशी ,, १। १६ बजेतक | शनि | चित्रा ,, ३। ४९ बजेतक | १४ ,, | **श्रीनृसिंह-चतुर्दशी।** |
| चतुर्दशी ,, ११। ४१ बजेतक | रवि | स्वाती ,, २। ५९ बजेतक | १५ ,, | **भद्रा** दिनमें ११। ४१ बजेसे रात्रिमें १०। ४५ बजेतक, **वृष-संक्रान्ति** दिनमें ९। १५ बजे, **व्रतपूर्णिमा, ग्रीष्म-ऋतु** प्रारम्भ। |
| पूर्णिमा ,, ९। ४८ बजेतक | सोम | विशाखा ,, १। ५० बजेतक | १६ ,, | **वृश्चिकराशि** दिनमें ८। ७ बजेसे, **बुद्धपूर्णिमा, वैशाख स्नान** समाप्त। |

# कृपानुभूति

## भगवन्नामकी कृपा

उक्त घटना जून, १९९८ ई० की है। मैं उस समय एक राष्ट्रीयकृत बैंकमें अधिकारीके पदपर ग्रामीण क्षेत्रमें तैनात था। वैसे मैं अजमेर राजस्थानका रहनेवाला हूँ। मेरे वृद्ध माता-पिताकी बदरीनाथ, केदारनाथ एवं द्वारकानाथके दर्शन करनेकी इच्छा थी, अतः उनकी इच्छाको शिरोधार्यकर मैंने उनको उपर्युक्त स्थानोंपर ले जानेका निश्चय किया। हमने अजमेरसे ही एक टैक्सी किरायेपर ली और १ जून १९९८ को केदारनाथकी यात्रापर निकल गये। इस यात्रामें मेरी छोटी बहनका परिवार भी हमारे साथ था और आठ दिनकी यह यात्रा बहुत ही अच्छेसे सम्पन्न हो गयी थी। मेरे पिताजी हृदयरोगसे ग्रस्त थे और पैदल चलनेपर उनको श्वास लेनेमें परेशानी हो जाती थी। इसलिये मुझे चिन्ता थी कि पहाड़ी और चढ़ाईवाले रास्तेको वे तय कर पायेंगे या नहीं, किंतु इस पूरी यात्रामें वे पूर्ण रूपसे स्वस्थ रहे और भगवान् केदारनाथकी कृपासे हमारी यात्रा निर्विघ्न सम्पन्न हो गयी। ८ जूनको हम वापस अजमेर पहुँच गये। ९ जून १९९८ को हमारे टिकिट रेलमार्गसे अजमेरसे अहमदाबाद होते हुए वेरावलके लिये थे। चूँकि हम ८ दिन पहाड़ियोंपर घूम रहे थे, अतः हमें बाकी जगहकी कोई खबर नहीं थी।

हम जब ९ जूनकी यात्राकी तैयारी कर रहे थे, उसी समय ज्ञात हुआ कि गुजरातमें सोमनाथ और द्वारकाकी तरफ भारी तूफान आनेकी घोषणा हुई। इसके तहत ही हमारे कुछ स्नेही हितैषी मुझे समझाने लगे कि माताजी तथा पिताजीको तो हम कह नहीं सकते, पर तू तो समझदार है, ऐसे तूफानमें तुझे नहीं जाना चाहिये, वहाँ कुछ भी हो सकता है।

मेरे हृदयसे स्वतः ही बोल प्रकट हुए, मैंने उनसे कहा—'भाई साहब, भगवान्के दर्शन नसीबसे हुए तो ठीक, नहीं तो वापस लौटकर आ जायँगे, लेकिन दर्शन करने जायँगे जरूर।'

हम निर्धारित समयपर रेलवे स्टेशन पहुँच गये, वहाँ भी यह उद्घोषणा हो रही थी कि 'तूफानके खतरेके कारण गुजरात-यात्रा नहीं की जाय एवं उक्त यात्राके टिकट कैंसिल करवानेपर रेलवे कोई चार्ज नहीं काट रहा है।' किंतु भगवद्दर्शनकी लालसा मेरे मनमें तूफानके वेगसे भी प्रबल होती जा रही थी, अतः मैंने यात्रा कैंसिल न करनेका निर्णय लिया और अपनेको भगवान्के भरोसे कर दिया। हम सब जब घरसे निकले तबसे ही मैंने मन-ही-मन प्रभुका जप '**श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेव**' करना प्रारम्भ कर दिया था। इस यात्रामें हम आठ लोग थे। हम अहमदाबाद समयपर पहुँच गये थे। वहाँसे रात्रि ९ बजे हम वेरावल जानेवाली ट्रेनमें बैठ गये। उसी कोचमें एक सिन्धी परिवार और बैठा था। वे लोग भी वेरावल ही जा रहे थे, मैंने कौतूहलवश उनसे तूफानकी जानकारी ली, तो उन्होंने बतलाया कि तूफान दिनमें आकर आगे जामनगर द्वारकाकी तरफ बढ़ चुका है और तूफानसे भारी नुकसान हुआ है। मैं लगातार सोते-जागते प्रभुनामका स्मरण किये जा रहा था और न जाने क्यों मुझे ऐसा विश्वास होता जा रहा था कि प्रभु हमारे साथ हैं और हमारी यात्रा निर्विघ्न पूरी होगी।

हम प्रातः वेरावल स्टेशन उतरे, वहाँसे सोमनाथ पहुँचे। रास्तेभर तूफानकी तबाहीके मंजर देखते जा रहे थे, जो रोंगटे खड़े करनेवाला था। मैंने सोमनाथ पहुँचकर ट्रस्टद्वारा निर्मित भवनमें कमरे बुक करवाये। कमरे बुक करते समय वहाँके प्रबन्धक महोदयने कहा कि 'कमरे तो बुक करवा लो, लेकिन बिजली और पानी नहीं है, अतः इनके लिये हमें परेशान नहीं करना।' मेरे मुँहसे अनायास ही निकला कि प्रभुकी

कृपा होगी तो उसकी भी व्यवस्था हो जायगी।

कमरेपर आकर परिवारीजनोंको थोड़ा विश्राम करनेके लिये कहकर मैं चाय-पानीकी व्यवस्था करने लगा। किंतु जब मैं चाय लेकर आया तो उसी समय प्रभुकी कृपासे बिजली आ गयी। यह देख मैनेजर साहबने मुझसे कहा, आपने ठीक ही कहा था, प्रभुकृपासे बिजली आ गयी। मैं मोटर चालू कर रहा हूँ आप स्नान आदिसे निवृत्त हो जायँ और पीनेका पानी भी ले लें। हमने नित्य क्रियासे निवृत्त हो सानन्द सोमनाथ भगवान्‌के दर्शन किये और आरती-दर्शनका लाभ लिया। तत्पश्चात् मैंने द्वारकाके लिये बसके बारेमें पता किया तो ज्ञात हुआ कि सुबह ७ बजे गुजरात रोडवेजकी बस है।

रात्रि विश्रामकर हमलोग सुबह बसमें बैठ गये। सोमनाथसे द्वारकाके बीचके करीब २५० किलोमीटरके सफरमें हमने तूफानकी विनाशलीला देखी। पूरे रास्ते शायद ही कोई वृक्ष ऐसा हो, जिसे क्षति नहीं पहुँची हो, टेलीफोन और बिजलीके खम्भे धराशायी थे। जगह-जगह मवेशी मरे पड़े थे। प्रत्यक्षदर्शियोंके अनुसार कोई भी प्राणी जो मकानके बाहर था, जिन्दा नहीं बच पाया। हम सफर पूराकर करीब ४ बजे द्वारका पहुँचे। यहाँ हमने बाँगड धर्मशालामें कमरे लिये, लेकिन यहाँपर भी बिजली और पानीकी वही समस्या थी। प्रबन्धक महोदय राजस्थानके डीडवानाके ब्राह्मण बन्धु थे और बहुत नेक एवं भले इन्सान थे। जब उन्होंने मेरा परिचय जाना कि मैं भी ब्राह्मण ही हूँ और अजमेरका रहनेवाला हूँ, तो उन्होंने स्वतः ही कहा कि देखो साहब! लाइट तो मेरे बसमें नहीं है, लेकिन पानीकी आपको जरूरत पड़े तब बता देना, मैं टैंकसे निकाल दूँगा। साथ ही उन्होंने अपने यहाँसे तत्काल पीनेके पानीकी व्यवस्था कर दी। मैंने सोचा कि कल सुबहके बेंटद्वारकाके टिकट बुक करवा लूँ। धर्मशालाके बाहर ही टिकट काउण्टर था, मैं वहाँ गया तो जो सज्जन बुकिंग कर रहे थे, वे बोले कि कम-से-कम १५ टिकटकी बुकिंग होगी, तब ही बस जायगी और बेंट द्वारकाके लिये स्टीमर नहीं चल रहे हैं। हम स्नानसे निवृत्त हो द्वारकापुरीके दर्शन करने चले गये, वापस आकर भोजन आदिसे निवृत्त होकर बैठे ही थे कि करीब शाम साढ़े सात बजे एक यात्रीदल आया। लाइट नहीं होनेसे अँधेरा तो था ही, अतः एक सज्जन सीधे मेरे पास आये और कमरेके लिये पूछने लगे। साथ ही बोले कि यहाँ बेंट द्वारकाके टिकट भी तो मिलते हैं? मैंने कहा—हाँ, आप कितने लोग हैं, तो बतलाया कि वे लोग भी आठ हैं। हम भी आठ ही थे। अतः मैं तुरन्त उनको साथ लेकर टिकटहेतु गया। बुकिंगवाले सज्जन मुझे पहचान रहे थे, क्योंकि उनसे दो-तीन बार मुलाकात हुई थी। वे देखते ही बोले कि साहब! आपने सही कहा, प्रभुकी इच्छा आपको दर्शन देनेकी है, क्योंकि अभी समाचार आया है कि कल सुबहसे स्टीमर भी चालू हो जायँगे। हमने शीघ्र सोलह टिकट बुक करवाये। ये सब होता रहा और मेरे मनमें भगवान्‌का जप चलता रहा।

दूसरे दिन हमने आरामसे बेंटद्वारकामें द्वारकाधीशके दर्शन किये। हमारे टिकट ट्रेनसे द्वारकासे ही बुक थे, किंतु पटरियोंके क्षतिग्रस्त होनेके कारण ट्रेन द्वारकातक नहीं आ रही थी। हमें ट्रेनके लिये जामनगर या राजकोट जाना होगा। हम बससे जामनगरतक आये, लेकिन टेलीफोन लाइन क्षतिग्रस्त थी, अतः ट्रेन वहाँसे जायगी या नहीं, पक्का नहीं पता चल पाया। हम ऑटोसे रेलवे स्टेशन गये। मैंने बाकी सबको ऑटोमें ही छोड़कर स्टेशनपर पूछताछ की, तो बताया गया कि हमारे जिस ट्रेनमें टिकट बुक थे, वह आज ही यहाँतक पहुँची थी। और एक घंटे बाद वापस रवाना होगी। हम यात्रा पूर्णकर अजमेर पहुँचे, तो सभी परिवारीजन और शुभचिन्तक तनावमें थे कि हम सही-सलामत भी हैं या नहीं, क्योंकि पूरे रास्ते टेलीफोनसे सम्पर्क नहीं हो पाया था। कहते हैं, ईश्वरकी कृपा होती है तो सभी कुछ सम्भव हो जाता है। इस भाँति ईश्वरस्मरणसे हमारी यात्रा निर्विघ्न पूर्ण हुई।—**राजेन्द्र प्रसाद शर्मा**

# पढ़ो, समझो और करो

(१)

## एक प्रेरणादायी पत्र

पद्मविभूषण श्रीघनश्यामदास बिड़ला प्रसिद्ध उद्योगपति, स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी, धार्मिक कार्योंमें रुचि लेनेवाले, समाजसुधारक और शिक्षा उन्नायक थे। महान् उद्योगपति और प्रचुर धन-सम्पदाके स्वामी होते हुए भी उन्होंने सादगी भरा-जीवन जिया और अपने पुत्रको भी ऐसा ही करनेके लिये एक पत्रके माध्यमसे संदेश दिया। प्रस्तुत है उनका वह प्रेरणादायी पत्र।

चि० बसंत...

मैं अपने अनुभवकी कुछ बातें लिख रहा हूँ। उसे भविष्यमें बड़े और बूढ़े होकर भी बार-बार पढ़ना। संसारमें मनुष्य-जन्म दुर्लभ है। जो मनुष्य-जन्म पाकर भी अपने शरीरका दुरुपयोग करता है, वह पशुसे भी बदतर है।

तुम ध्यान रखना कि हमारे पास जो भी धन है, तन्दुरुस्ती है, साधन है, उनका उपयोग सेवाके लिये ही हो, तब तो वे साधन सफल हैं, अन्यथा वे शैतानके औजार बन जायँगे।

धन किसीके पास सदाके लिये नहीं रहता, इसलिये धनका उपयोग मौज-मस्ती और शौकके लिये कभी न करना, बल्कि उसका उपयोग सेवाके लिये ज्यादा-से-ज्यादा करना। जितना धन हमारे पासमें है, उसे अपने ऊपर कम-से-कम खर्च करना, बाकी जनकल्याण और दुखियोंका दुःख दूर करनेके लिये ही व्यय करना।

अपनी संतानके लिये भी यही उपदेश देना कि धन शक्ति है, इस शक्तिके नशेमें किसीपर अन्याय हो जाना सम्भव होता है। हमें ध्यान रखना है कि अपने धनके उपयोगसे किसीपर अन्याय न हो।

यदि हमारे बच्चे मौज-शौक, ऐश-आराम करनेवाले होंगे तो पाप करेंगे और हमारे व्यापारको चौपट करेंगे। ऐसे नालायक बच्चोंको धन विरासतमें कभी न देना बल्कि अपने मरनेके बाद अपना धन उनके हाथमें जाय उससे पहले ही अपने सब धनको जनकल्याणके किसी काममें पूरी तरह लगा देना या गरीबोंमें बाँट देना।

हम सब भाइयोंने अपार मेहनतसे व्यापार बढ़ाकर जो धन कमाया है, वह धन तुम केवल अपने स्वार्थहेतु खर्च नहीं कर सकते। अपनी संतानके मोहके अन्धेपनमें ये न समझ लेना कि वे हमारे द्वारा दिये जानेवाले धनका सदुपयोग ही करेंगे।

धर्म और पुराने संस्कारोंको कभी न भूलना, वे ही हमें अच्छी बुद्धि देते हैं। अपनी पाँचों इन्द्रियोंपर काबू रखना, वरना ये तुम्हें डुबो देंगी।

अपनी दिनचर्यापर विशेष ध्यान रखना। जिस व्यक्तिका न उठनेका समय है, न सोनेका समय है, उससे हम किसी बड़ी सफलताकी उम्मीद नहीं रख सकते। नित्य नियमसे योग-व्यायाम अवश्य करना।

स्वास्थ्य ही सबसे बड़ी सम्पदा है। स्वास्थ्यसे कार्यमें कुशलता आती है, कुशलतासे कार्यसिद्धि और कार्यसिद्धिसे समृद्धि आती है। सुख-समृद्धिके लिये स्वास्थ्य ही पहली शर्त है।

मैंने देखा है कि स्वास्थ्य-सम्पदासे रहित होनेपर करोड़ों-अरबोंके स्वामी भी कैसे दीन-हीन बनकर रह जाते हैं। स्वास्थ्यके अभावमें सुख-साधनोंका कोई मूल्य नहीं।

स्वास्थ्यरूपी सम्पदाकी रक्षा हर हालमें करना। भोजनको दवा समझकर खाना। स्वादके वश होकर खाते मत रह जाना। जीनेके लिये खाना, न कि खानेके लिये जीना।—**घनश्यामदास बिड़ला**

(२)

## संतकी करुणा और उदारता

एक समय टण्डेआदम सिन्ध देशमें स्थित श्रीअमरापुर दरबारपर वार्षिकोत्सव 'चैत्र मेला' लगा हुआ था। हजारों श्रद्धालु दूर-दूरसे आये हुए थे। भजन और भोजनका अखण्ड भण्डारा चल रहा था। भण्डारा खिलानेवाला हॉल सभी वर्ण-जातियोंके भक्तों एवं दीन-

दुखियोंसे सदैव भरा रहता था, बहुत बड़ी संख्यामें लोग आते और भण्डारेमें भोजन प्रसाद पाकर जाते थे। भण्डारेका आयोजन स्वामी टेऊँरामजी महाराजकी ओरसे था। उनका कथन था कि जो भी यहाँ आये, वह भण्डारेका प्रसाद जरूर खाकर जाय··· कोई भूखा न जाय··· प्रेमपूर्वक भोजन प्रसाद खाकर जाय··· ऐसी उच्चवृत्ति अर्थात् उदारचित्तकी प्रवृत्ति थी स्वामीजीमें!

उस चैत्र मेलेमें एक गरीब वृद्ध महिला भी आयी हुई थी, जो भूख-प्याससे अत्यन्त व्याकुल थी। उसने भी भण्डारेमें भोजन-प्रसाद पाया। गरीबीके कारण वह अभावग्रस्त थी, उसने भोजनके पश्चात् थाली-कटोरा, गिलास रेतमें छिपा दिया, उसने सोचा जब सभी चले जायँगे तब यहाँसे निकालकर घर ले जाऊँगी। ऐसा करते हुए किसी सेवादारने उसे दूरसे ही देख लिया और यह बात युगपुरुष सद्‌गुरु स्वामी श्रीटेऊँरामजी महाराजको जाकर बतायी कि 'स्वामीजी, उस माईने भोजनवाले बर्तन (थाली-कटोरा, गिलास) रेतमें गड्ढा करके छिपा दिये हैं, वह चुराकर ले जाना चाहती है।'

सद्‌गुरु स्वामी टेऊँरामजी महाराज तो करुणाके सागर थे। दया एवं कृपाके निधान थे। वे उस माताकी गरीबी हालतसे परिचित थे। अत: स्वामीजीने उस भक्तसे कहा—'बेटा! जो कुछ तुमने देखा न, वह अब किसीसे मत कहना···माता निर्धन-गरीब है···उसे बर्तनोंकी आवश्यकता होगी...एक काम करो, तुम उस माताको यहाँ बुलाकर लाओ।'

सेवादार स्वामीजीकी आज्ञा पाकर माताको लेने आया। माता डर गयी, शायद स्वामीजीको बर्तन छिपानेकी बात मालूम पड़ गयी, मुँहसे कुछ बोली नहीं, सेवादार माताको स्वामीजीके पास ले आया। स्वामीजी तो भजनानन्दकी मौजमें बैठे थे। स्वामीजीने अपनी करुणामयी कृपादृष्टि उस मातापर डाली। माताको बैठाकर, सेवादारसे कहा, 'जो वे बर्तन हैं उसे तो लेकर आओ ही—साथ ही नया कटोरा-थाली, गिलास और भी लेकर आओ।' सेवादार स्वामीजीकी आज्ञाके अनुसार सारी सामग्री ले आया। तत्पश्चात् उन वृद्ध माताको देते हुए स्वामीजीने कहा—आप किसी प्रकारकी चिन्ता न करें, आप इसे घर ले जायँ। तत्पश्चात् मेलेके उपलक्ष्यमें प्रसादस्वरूप उन्हें कपड़े और मिठाई भी दी। माता स्वामीजीका इतना स्नेह पाकर गद्‌गद हो गयी, खुशीका कोई ठिकाना नहीं था कि वह कुछ बोल सके। बस! मन-ही-मन अपने भाग्योदयको देख प्रसन्न हो रही थी। सोच रही थी कि इस संसारमें ऐसे भी उदारचित्त, सरल, दयालु, संत-महात्मा भी हैं। ऐसी होती है करुणा, संतोंका होता है इतना विशाल हृदय!

इतना कुछ देनेके पश्चात् स्वामीजीने कहा—माता, संकोच मत करो, यदि तुम्हें और भी कुछ··· किसी भी वस्तुकी आवश्यकता हो तो नि:संकोच होकर कहो। बस! माताके अश्रुधार बहने लगे और स्वामीजीकी करुणा, कृपा एवं उदारताका यशोगान करती हुई चली गयी।—**प्रेमप्रकाशी संत मोनूराम**

(३)

## डॉक्टरके रूपमें भगवान्

डॉक्टर भगवान्‌का रूप होते हैं, वे जिन्दगी और मृत्युके बीच संघर्ष करते व्यक्तिको जीवन देते हैं। इसी भावबोधकी एक घटना मेरे भी साथ हुई थी। घटना इस प्रकार है—

दीपावली २००७ ई० की रातको करीब ९ बजे मेरा इकलौता पुत्र जौहरी बाजारसे घर अपनी मोटर साइकिलसे आ रहा था। राजस्थान विश्वविद्यालयके सामने एक कुत्तेको बचानेके चक्करमें दुर्घटनावश वह गिर पड़ा और उसके सिरमें भयंकर चोट लग गयी। वह बेहोश पड़ा हुआ था कि कारमें एक लेडी डॉक्टर वहाँ आकर रुकीं। उन्होंने उसे उठाकर अपनी गाड़ीमें लिटाया और हॉस्पिटलके इमर्जेंसी वार्डमें ले गयीं। फिर मुझे फोनद्वारा सूचित किया कि आपके बेटेका एक्सीडेंट हो गया है। मैं उसे लेकर अस्पताल जा रही हूँ। आप तुरन्त एस०एम०एस० हॉस्पिटल पहुँचिये। हॉस्पिटल मेरे घरसे यही-कोई पाँच-

छ: किलोमीटरकी दूरीपर स्थित है। मैं बिना समय गँवाये हॉस्पिटल पहुँच गया। वे डॉक्टर मेरे बेटेको देख रही थीं और उन्होंने पहले ही एक्स-रे इत्यादि करवा दिया था। मैंने उनका परिचय पूछा तो उन्होंने कहा—मैं एक डॉक्टर हूँ। मैंने अपना काम कर दिया है। आप पिता हैं, आ गये हैं, आगेका काम अब आप सँभालिये।

उस देवीकी कार्यशैली तथा व्यक्तित्वके सामने मैं कुछ और पूछ ही न पाया। मैंने सोचा मेरे मोबाइलपर उनका नम्बर आ गया है। मैं कल सुबह उनसे मिलकर कृतज्ञता व्यक्त करूँगा, लेकिन जब मैंने अपना मोबाइल चेक किया तो पाया कि उन्होंने फोन मेरे बेटेके मोबाइलसे ही किया था। मुझे उनकी कोई जानकारी प्राप्त न हो सकी। वे महिला डॉक्टर उस समय भगवान् बनकर ही मेरे घायल और बेहोश बेटेके पास आयी थीं, यदि वे उस समय आकर इस प्रकारकी सहायता न करतीं तो दीपावलीके ही दिन मेरे बेटेके जीवनकी ज्योति बुझ सकती थी और मेरे जीवनमें अँधेरा छा सकता था। उन महिला डॉक्टरकी निष्काम सेवा-भावना, परदु:खकातरता और कर्तव्य-परायणताके लिये कोटि-कोटि प्रणाम! उनके-जैसे कर्तव्यपरायण चिकित्सकोंके कारण ही यह दुनिया आज सुख-शान्तिका अनुभव कर रही है।—**नन्दलाल बंसल**

(४)

## परदु:खकातरता

हावड़ा-मुम्बई रेल-मार्गपर छत्तीसगढ़में खरसिया रेलवे स्टेशन है। खरसियासे चन्द्रपुर सड़क-मार्गपर डभरा तहसील मुख्यालय है। डभरासे २ कि०मी० अन्दर एक गाँव कटेकोनी खुर्द है। शासकीय पूर्व माध्यमिक शाला कटेकोनी खुर्दमें मेरे पिताजी प्रधानाध्यापक थे। फरवरी १९७३ ई० की एक घटना है।

एक दिन वे मध्यावकाशमें विद्यालयसे चाय पीनेहेतु अपने निवास आ रहे थे। तभी एक पड़ोसन बुजुर्ग महिला (बैजन्तीकी दादी) अपनी गलीके दरवाजेपर खड़े होकर आर्तस्वरमें चिल्लायी—'गुरु! बैजन्ती कुआँ (बावली)-म गिर गे हे, दऊंड़ा गुरु! दऊंड़ा।' यह सुनकर वे लपककर अपने घरमें घुसे। वे बंगाली कुर्ता, कलाई घड़ी एवं पायजामेकी कुछ वस्तुएँ फटाफट बरामदेमें जमीनपर ही मेरी माँके सामने रख दिये। मेरी माँने घबराकर पूछा—'क्या हो गया?' पिताजीने कहा, 'बैजन्ती कुएँमें गिर गयी है।'

बैजन्ती उस समय ४-५ सालकी थी। वे दौड़कर बाड़ीमें कुएँके पास गये। उस समय एक अमोल नामका पड़ोसी कुएँमें रस्सा डालकर डूबती हुई बैजन्तीको चिल्ला रहा था—'बैजन्ती! रस्सा पकड़, रस्सा पकड़।' नन्हीं बैजन्ती तैरना नहीं जानती थी। पिताजीने कुएँमें झाँककर देखा, बैजन्ती दोनों हाथोंसे पानी पीटते हुए हिचकोले खा रही थी। पिताजीने अमोलसे पूछा, कुएँमें कितना पानी है? जवाब मिला—'करीब १२-१५ फुट।' उन्होंने तुरन्त ऊपरसे कुएँमें छलाँग लगा दी। पहले वे स्वयं कुछ नीचे पानीमें चले गये। चूँकि पिताजीको बचपनसे ही तैरनेका अभ्यास था, उन्होंने तुरन्त पानीकी सतहपर आकर बैजन्तीको एक हाथसे ऊपर उठाते हुए दूसरे हाथसे रस्सेको पकड़ा। कुर्ता उतारकर दौड़कर कुएँके पास आने, स्थिति भाँपने, छलाँग लगाने एवं बच्चीको सहारा देनेमें उन्हें मात्र ५-६ मिनट लगा होगा। समयपर तत्परता एवं त्वरित निर्णयसे उस बच्ची बैजन्तीकी जान बच गयी। उपस्थित लोगोंने ऊपरसे रस्सा बँधा हुआ एक बाल्टा कुएँमें डालकर पहले बच्चीको निकाला, तत्पश्चात् पिताजी भी निकल आये।

लोगोंने पिताजीकी बड़ी सराहना की। बैजन्तीके माता-पिता, दादी एवं ग्रामवासी तो उन्हें बार-बार धन्यवाद देने लगे। उन लोगोंके कृतज्ञता-प्रदर्शनको देख पिताजीने कहा—यह सब ऊपरवालेकी कृपा है, बैजन्तीको बचना था, इसलिये प्रभुने बचा लिया। उन्होंने मुझे इस पुण्य-कार्यमें निमित्त बनाया।

जब-जब मुझे इस घटनाकी स्मृति होती है, मेरा हृदय आनन्दसे भर जाता है।—**योगेन्द्रकुमार यादव**

# मनन करने योग्य

## परमात्मा प्रेमके अधीन हैं

**( गोलोकवासी परम भागवत सन्त श्रीरामचन्द्र केशव डोंगरेजी महाराज )**

एक बार सत्यभामाको यह अभिमान हो गया कि भगवान्‌की सबसे प्रिय पटरानी तो मैं हूँ। भगवान्‌का प्रेम तो सभी रानियोंके प्रति एक-जैसा ही था। उन्होंने सत्यभामाके अभिमानको दूर करनेके लिये एक लीला की।

भगवान्‌की प्रेरणासे उन दिनों नारदजी वहाँ आये। सत्यभामाने नारदजीसे कहा, 'मुझे हर एक जन्ममें श्रीकृष्ण-जैसे पति ही मिलें, ऐसा कोई उपाय बताओ।'

नारदजीने कहा, 'आप जिस वस्तुका इस जन्ममें दान करेंगी, वह वस्तु अगले जन्ममें प्राप्त होगी। यदि आप श्रीकृष्णको अगले जन्ममें पतिके रूपमें प्राप्त करना चाहती हैं, तो उनका दान करो।'

सत्यभामाजी तो श्रीकृष्णका दान करनेके लिये तैयार हो गयीं, किंतु उनका दान ले कौन? जब कोई दान लेनेके लिये तैयार न हुआ, तो सत्यभामाने नारदजीको इसके लिये तैयार किया। आखिर नारदजीने स्वीकृति दे दी। संकल्प करके सत्यभामाने श्रीकृष्णका दान कर दिया। नारदजी श्रीकृष्णको लेकर चलने लगे।

सत्यभामा घबरायी और बोली, 'मेरे पतिको लेकर आप कहाँ जा रहे हैं?'

नारदजीने कहा, 'आपने अपने पतिका दान कर दिया है। श्रीकृष्ण अब मेरे हैं। श्रीकृष्ण मुझे दानमें मिले हैं, अतः इनपर मेरा अधिकार है।'

सत्यभामाको अपनी गलतीका अहसास हुआ। वे नारदजीसे श्रीकृष्णकी माँग करने लगीं। नारदजीने कहा, 'दानमें दी गयी वस्तु फिर ली नहीं जाती। और मैं दूँगा भी नहीं।'

यह बात जैसे ही सारे महलमें फैली, सभी रानियाँ दौड़ी चली आयीं। रुक्मिणी भी वहाँ उपस्थित हुईं। सब रानियाँ नारदजीसे प्रार्थना करने लगीं, 'हमारे कृष्णको लौटा दीजिये।'

लेकिन नारदजी किसी भी तरह नहीं माने। अन्तमें जब सबने बहुत विनती-चिरौरी की तो बोले, 'मैं मुफ्तमें तो श्रीकृष्णको वापस करूँगा नहीं। हाँ, यदि आप इन्हें लेना ही चाहती हैं, तो इनके बराबर मुझे सोना दे दीजिये।'

सत्यभामा खुश हो गयी। बोली, 'अरे, यह तो मेरे लिये सामान्य बात है। मेरे पास आभूषणोंका ढेर है, स्यमन्तकमणि है। और भगवान्‌का वजन होगा भी कितना!'

सत्यभामा अपने सारे गहने ले आयी। तराजूके एक पलड़ेमें लीलानाथ भगवान् श्रीकृष्णको बिठाया गया और दूसरे पलड़ेमें आभूषण रखे जाने लगे। सभी आभूषण रख दिये गये, किंतु श्रीकृष्णका पलड़ा जरा-सा भी ऊँचा नहीं हुआ। सत्यभामाने अपने अन्य सभी प्रकारके गहने हीरे-मोती आदि रखे और स्यमन्तकमणि भी उस पलड़ेमें रख दी, किंतु श्रीकृष्ण नहीं तुल पाये।

जीवको जब अभिमान आ जाता है, तब भगवान् हलके कैसे हों? भगवान्‌का मूल्य क्या हीरे-मोती और आभूषणोंसे आँका जा सकता है? भगवान् क्या द्रव्यसे खरीदे जा सकते हैं? अन्य सभी रानियाँ भी अपने-अपने आभूषण, रत्न आदि ले आयीं, किंतु श्रीकृष्णका वजन न हुआ, सो न ही हुआ। अन्तमें सत्यभामा रुक्मिणीको भी बुला लायी। रुक्मिणीको सारा रहस्य समझमें आ गया कि क्यों श्रीकृष्ण नहीं तुल पा रहे हैं।

वे बोलीं, 'क्या कभी भगवान्‌को आभूषणोंसे तोला जा सकता है?'

रुक्मिणीजीने प्रेमसे तुलसीका एक पत्ता तराजूमें रखा और उसके रखते ही भगवान्‌का पलड़ा ऊपर उठ गया।

परमात्मा प्रेमके अधीन हैं। दान, तप, तीर्थयात्रा, यज्ञ, द्रव्य, ज्ञान आदिसे परमात्माको प्राप्त नहीं किया जा सकता। उन्हें तो एकमात्र प्रेमाभक्तिसे ही वशमें किया जा सकता है। **[ प्रेषक—श्रीरमेश गणेशजी दुसाने ]**

## नवीन विशिष्ट प्रकाशन—शीघ्र प्रकाश्य

**चित्रमय श्रीरामचरितमानस (कोड 2295) [हिन्दी अनुवाद-सहित, चार रंगोंमें आर्ट पेपरपर]** जिज्ञासु पाठकोंकी विशेष माँगपर 300 आकर्षक रंगीन चित्रोंके साथ श्रीमद्भगवद्गीता (कोड 2267) की तरह पहली बार प्रकाशित किया जा रहा है।

बालकाण्ड

मंगलमूर्ति गणेशजी    भगवान् शिव-पार्वती

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीजानकीवल्लभो विजयते ॥

# श्रीरामचरितमानस

## प्रथम सोपान

## बालकाण्ड

### श्लोक

**वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।**
**मङ्गलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ॥ १॥**

अक्षरों, अर्थसमूहों, रसों, छन्दों और मंगलोंकी करनेवाली सरस्वतीजी और गणेशजीकी मैं वन्दना करता हूँ॥ १॥

**भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।**
**याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम्॥ २॥**

श्रद्धा और विश्वासके स्वरूप श्रीपार्वतीजी और श्रीशङ्करजीकी मैं वन्दना करता हूँ, जिनके बिना सिद्धजन अपने अन्तःकरणमें स्थित ईश्वरको नहीं देख सकते॥ २॥

१७

प्र० ति० 20-02-2022
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57 पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2020-2022
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENCE No. WPP/GR-03/2020-2022

## गीताभवन, स्वर्गाश्रमके सत्संगकी सूचना

गीताभवन, स्वर्गाश्रम ऋषिकेशमें ग्रीष्मकालमें सत्संगका लाभ श्रद्धालु एवं आत्मकल्याण चाहनेवाले साधकोंको प्रारम्भसे ही प्राप्त होता रहा है। **पूर्वकी भाँति इस वर्ष भी वैशाख-कृष्ण चतुर्थी, वि०सं० २०७९** [दिनांक २०-४-२०२२, दिन बुधवार]-**से ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा, वि०सं० २०७९** [दिनांक १४-०६-२०२२, दिन मंगलवार]-**तक सत्संगका विशेष आयोजन प्रारम्भ किया जायगा, जो लगभग दो मासतक चलेगा।** इस अवसरपर संत-महात्मा एवं विद्वद्गणोंके पधारनेकी बात है। **गीताभवनमें चैत्र एवं आश्विन नवरात्रमें श्रीरामचरितमानसका सामूहिक नवाह्न-पाठका कार्यक्रम रहता है।** गीताभवनमें आयोजित दुर्लभ सत्संगका लाभ श्रद्धालु और कल्याणकामी साधकोंको अवश्य उठाना चाहिये।

पूर्वकी भाँति इस वर्ष भी द्विजातियोंका सामूहिक **यज्ञोपवीत-संस्कार दिनांक ८ मई, दिन रविवार** (वैशाख शुक्ल सप्तमी)-को होना निश्चित हुआ है, जिसकी **पूजा ७ मई, दिन शनिवारको प्रारम्भ हो जायगी।** इच्छुक जनोंको **६ मई, दिन शुक्रवार**तक गीताभवन पहुँच जाना चाहिये।

गीताभवनमें संयमित साधक-जीवन व्यतीत करते हुए सत्संग-कार्यक्रमोंमें सम्मिलित होना अनिवार्य है। यहाँ आवास, भोजन, राशन-सामग्री आदिकी यथासाध्य व्यवस्था रहती है।

महिलाओंको अकेले नहीं आना चाहिये, उन्हें किसी निकट सम्बन्धीके साथ ही यहाँ आना चाहिये। गहने आदि जोखिमकी वस्तुओंको, जहाँतक सम्भव हो, नहीं लाना चाहिये।

सत्संगमें आनेवाले साधकोंको **आधार कार्ड** अथवा फोटोयुक्त अन्य **पहचान-पत्र** रखना आवश्यक है।

व्यवस्थापक—गीताभवन, पो०-स्वर्गाश्रम—२४९३०४

## 'कल्याण' नामक हिन्दी मासिक पत्रके सम्बन्धमें विवरण

१-प्रकाशनका स्थान—गीताप्रेस, गोरखपुर, २-प्रकाशनकी आवृत्ति—मासिक
३-मुद्रक एवं प्रकाशकका नाम—केशोराम अग्रवाल, (गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये), राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय, पता—गीताप्रेस, गोरखपुर
४-सम्पादकका नाम—प्रेमप्रकाश लक्कड़, राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय, पता—गीताप्रेस, गोरखपुर
५-उन व्यक्तियोंके नाम-पते जो इस पत्रिकाके मालिक हैं और जो इसकी पूँजीके भागीदार हैं:—गोबिन्दभवन-कार्यालय, १५१, महात्मा गाँधी रोड, कोलकाता (पश्चिम बंगाल सोसाइटी पंजीयन अधिनियम १९६१ के अन्तर्गत पंजीकृत)।

मैं केशोराम अग्रवाल गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये इसके द्वारा यह घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखी बातें मेरी जानकारी और विश्वासके अनुसार यथार्थ हैं।

केशोराम अग्रवाल (गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये)—प्रकाशक